खंडहर बता रहे हैं!

कहानीकार
त्रिलोक गोयल

खंडहर बता रहे हैं!

¤

कहानीकार
त्रिलोक गोयल

¤

प्रकाशक
बन्धु प्रकाशन मन्दिर
प्रयाग नारायण मार्ग, आगरा-३

प्रकाशक :—
बन्धु प्रकाशन मन्दिर
कोकामल मार्केट,
प्रयागनरायण मार्ग आगरा-३

प्रथम संस्करण : १९७१
द्वितीय संस्करण : १९७५

मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक :—
विमल बंसल
विमल मुद्रण केन्द्र
आगरा

समर्पण

उन प्यासी आत्माओं को जो मर
कर भी कहानियों व किंवदं-
तियों के खंडहरों में जीवित
हैं जो युग युग से प्रगाढ़
निद्रा, में सोई हुई
हैं पर हमें जगाती
हैं।

श्रद्धानत
त्रिलोक गोयल

कौन कहाँ ?

१—आंसू के अवतार	—	९
२—हवेली जो आधी रंगी रह गई	—	१५
३—दो रईस जादे	—	२७
४—दिल्ली का दिल हिल गया	—	३७
५—दवात पूजा	—	४७
६—ताबूत की कील	—	५७
७—परलोक का भुगतान	—	६१
८—संघर्ष हार गये	—	७५
९—ताज से तराजू तक	—	८३
१०—खण्डर का प्रेत	—	९८
११—भारत की प्रथम प्रधान मन्त्री राधा	—	१०६
१२—....और भामाशा दुबारा मर गया	—	१३३

भूमिका—

खंडहर की गूँज

"खंडहर बता रहे हैं इमारत बुलन्द थी" यह पुरानी उक्ति चिर नवीन और तथ्य पूर्ण है। खंडहरों में विचरने का आनन्द गूंगे का गुड़ है, ये रिक्त खँडहर आपको एक अजीब सी आत्म शान्ति से भर देंगे, उल्लास को जन्म देंगे। खंडहरों में अतीत मुस्कराता है, इतिहास बोलता हैं और कला संस्कृति अंगड़ाई लेती है। भूत वर्तमान बनकर समक्ष आ जाता है। उपेक्षा के आवरण में लिपटे उनके धूल भरे चेहरे कितने सलोने हैं, ये कोई अनुभवी आँखें ही देख सकती हैं, उनका मूल्यांकन कोई भावुक मन ही कर सकता है। डरो नहीं कहानियों के इन खंडहरों में सोई हुई आत्माओं का मिलन दुखद नहीं सुखद व प्रेरणास्पद होगा।

कहानी लेखन मेरे लिये सदा मृगतृष्णा हो रहा है, यह दुस्साहस तो 'अग्रबन्धु' के सम्पादक, बन्धु प्रकाश जी बंसल जैसे कुछ आत्मीयजनों के मार मार कर हकीम बना दिये जाने का सुपरिणाम है, जिसे मैं स्वयं कौतूहल से देख रहा हूं कि आखिर ये मुझसे बन कैसे पड़ा? मेरे लिये राजपथ तो कविता व नाटक एकाँकी है जिस पर मैं वर्षों के अभ्यास से आँख मीच कर भी दौड लेता हूँ परइस अनजाने ऊबड़ खाबड़ मार्ग में जाने कितनी ठोकरें खाई है, गिरा हूं, फिर उठ कर चल पड़ा हूं, और आज

सुहृदय पाठकों के न्यायालय में फैसला सुनने आ खड़ा हूं।

शक्कर पानी में घुले या दूध में उसका मिठास उभर कर बोलता है। मेरे इस कथा साहित्य में भी कविता का माधुर्य और नाटकों की संवाद शैली स्पष्ट प्रतिलक्षित होती है। यह दोष हो या गुण इस प्रभाव से मुक्त होना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

इतिहास की धुंधली रेखाओं और सन्, सम्वत, नाम, स्थान आदि के नीरस आंकड़ों में ललित कला के माध्यम से इन्द्र धनुषी रंग भरने का यह मेरा प्रथम प्रयास है। इस साहित्य का सृजन करते समय मेरे मन मस्तिष्क में न कहानी थी न इतिहास, सम्मुख था केवल अपनी जन्मदात्री जाति के यश वैभव को अक्षुण्य बनाना। बीता हुआ कल आने वाले कल को गढ़ता है—अतीत वर्तमान का निर्माण करता है यह धारणा या कथन मिथ्या नहीं है। साहित्य के हाथ में मैंने विगत की मशाल दी है जिससे वह आगत को रोशन कर सके। समाज अपने बीते हुये गौरव, स्वाभिमान, ऐश्वर्य व देव दुर्लभ चरित्र को पुनः हस्तगत करने की प्रेरणा पा सके यही मेरा लक्ष्य बिन्दु था और है।

यह कथा-कुन्ज न जाति विशेष का है न व्यक्ति विशेष का, वे तो केवल आधार मात्र हैं साधन मात्र हैं, सध्य है 'मानव'—यह पुस्तिका मानवता का इतिहास है, भारत से स्वर्ण युग का खंडहर।

कहानियों की कहानी

प्रस्तुत प्रकाशन में समग्रता को समाविष्ठ करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पाया हूं इसी कारण आपको

वैविध्य मिलेगा। यह आलोचना से परे लेखक की विवशता मात्र है। मेरे मन में उपादेयता पहले थी, साहित्य बाद में। कहीं कहीं तो मैं स्वयं असमंजस में हूं कि इन्हें कहानियां कहूं या कुछ और जैसे "भारत की प्रथम प्रधान मंत्री राधा" इसमें मुझे लघु उपन्यास की आत्मा के दर्शन हुये और नाम में भी हेमू को महत्व न देकर राधा को प्रमुखता देने की प्रेरणा इस विचार ने दी कि इस कथा के द्वारा मैं जन मानस के इस दम्भ को तोड़ना चाहता था कि "आज ही भारत जैसे विशाल देश की प्रधानमन्त्री होने का सम्मान एक नारी को मिला है।" फिर हेमू की प्रेरणा स्रोत भी तो राधा ही है। इसी प्रकार 'सँघर्ष हार गये' 'और भामाशाह दुबारा मर गया' तथा 'ताबूत की कील' तीनों जीवनियाँ जैसी लगती हैं पर क्या जीवनियाँ कहानी नहीं होती ? राजनैतिक कहानियों और देशभक्तों के वृत्तों के बिना इस कथा ग्रन्थ में पूर्णता आ पाती ? यही स्थिति 'दवात पूजा' कहानी की है यह सर्वथा काल्पनिक है पर समाज के चार कलम के धनियों की अर्चना न कर के मैं दोष का भागी ही होता। इस कथा के माध्यम से मैंने चारण कवियों और शुद्ध साहित्यिक कवियों की ही नहीं लक्ष्मी और सरस्वती की दूरी भी कम करने की चेष्टा की है।

'हवेली जो आधी रंगी रह गई' और' परलोक का भुगतान' जैसे एक ही नाटक के दो दृश्य हों पर दोनों की भावनायें प्रथक प्रथक है एक में जहाँ पूर्वजों की भूमि के प्रति मोह रहा है, दूसरे में पूंजी का सही प्रयोग व श्रेष्ठियों में दुर्लभता से प्राप्त होने वाली अनुकरणीय उदारता और राष्ट्रीय भावना प्रति लक्षित होती है।

'ताज से तराजू तक' कहानी इन महत्व प्रद प्रश्नों का समुचित उत्तर हैं कि अग्रवंशियों का शासन कब, क्यों और कैसे गया ? लक्ष्मी जी ने उनकी किन चारित्रिक कमजोरियों के कारण उपेक्षा प्रारम्भ की । "आँसू के अवतार की भूमिका अहिंसा और जीव दया है । जहाँ भी अहिंसा का जिक्र आता है बुद्ध, महावीर, ईसा, या गांधी का नाम आता है पर उनसे पूर्व भी किसी ने क्षत्रीय होते हुयें भी इसे स्वीकारा है हम यह भूल जाते हैं। "दो रईस जादे" आन बान मान का धनी पन व सती प्रथा की परिचायकता लिये हुये हैं।"

'दिल्ली का दिल हिल गया' कहानी की कहानी केवल इतनी है कि उसके द्वारा प्रजातांत्रिक प्रणाली की पवित्रता, सहजरुपता व अग्रोहे की समाजवादी भावना प्रकट कर सकूं। और अन्त में बात कहूंगा । "खंडहर के प्रेत की' यह जासूसी पद्धति पर अग्रोहे के उत्थान पतन का लेखा जोखा है।

इस प्रकार ये कहानियाँ आज ढोल बजा बजा कर कह रही है कि मुझ में साहित्कार है, देश भक्त है, राज-नैतिक है, वीर है, और उदार है, कहां है मुझमें अभाव? कहाँ हूं मैं किसी से कम ? मैं घटना प्रधान हूं, मैं विचार प्रधान हूं, मैं कल्पना प्रधान हूं, मैं भाव प्रधान हूं, मैं प्रभाव प्रधान हूं जितने गहरे जाओगे उतने मोती हाथ आयेंगे।

यदि विद्वान या समीक्षक लोग इन्हें कहानियाँ न मान कर कहानियों के खँडहर भी मान लेंगे तो मेरा प्रथम प्रयास सार्थक होगा स्तुत्य होगा।

—त्रिलोक गोयल

आँसू के अवतार

ओम स्वाहा ! ओम स्वाहा !! के समवेत स्वरों से दिग् दिगगन्त वेद वाणी से मुखरित हो उठे। समिधा की सौरभ व्योम मण्डल में व्याप्त हो गई। आमन्त्रित हो हो कर दूर-दूर से आये हुये राजा, महाराजा, श्रेष्ठियों व सम्बन्धियों से अतिथि शालायें भर गईं। ठट्ट के ठट्ट ऋषि मुनियों, ब्राह्मणों, भिक्षुओं, व्यापारियों, कलाकारों, बाजीगरों, नटी व नागरिकों से हाट बाट अवरुद्ध हो गए। पाकशाला, भोजनशाला, दानशाला, रंगशाला सभी तरफ चहल पहल देख पड़ती थी, नगरी नई दुलहिन सी सजी संवरी थी, कोट कंगूरों पर घृत दीपावलियें ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो चुनरी में जड़े सितारे सभ्राँत जन उज्वल वस्त्र मूल्यवान अलंकरण धारण किए प्रसन्न वदन विचर रहे थे— चारों ओर कोलाहल, चारों ओर उल्लास।

उत्सव का यह आयोजन आज से दो हजार वर्ष पूर्व अग्रोहा नगर में तत्कालीन अग्रवाल नरेश छत्रपति महाराज अग्रसेन ने किया था। इससे पहले वे ऐसे ही सत्रह महायज्ञ अपनी एक-एक रानी के सबसे बड़े पुत्र को यजमान और उसके गुरु को ब्रह्मा बना कर सानन्द सम्पन्न कर चुके थे और उनकी स्मृति में एक एक २ गोत्र चलाया था जो आज तक उनके समाज में प्रचलित है। यह अठारहवीं रानी के ज्येष्ठ पुत्र गोंधर को होता व उसके

गुरु ऋषि गौतम को आचार्य बनाकर प्रारम्भ किया गया था। आज इस यज्ञ का सातवाँ दिन था।

सूरज के सातवें घोड़े सा एक शुक्ल वर्ण पशु सुसज्जित यज्ञ मंडप में विशेष आकर्षण का केन्द्र था। पशु पर मखमल के कामदार वस्त्र और मोतियों के झूल पड़े थे, दर्शकों के लिए यह अनुमान लगाना कठिन था कि पशु देह पर धारण किये हुए रत्न रचित स्वर्ण भूषणों से पशु की शोभा बढ़ रही है या पानीदार पशु के संसर्ग से निर्जीव आभूषणों की पीठ पर फहराती केसरिया पताका महाराज श्री के प्रताप का डंका बजा रही थी। चामरधर, छत्रधर, अंग रक्षक अनेक मनुष्य पशु की सेवा में अनवरत रत थे? अपने सौभाग्य से राजाओं और श्रेष्ठियों के हृदय में भी ईर्षाग्नि उत्पन्न कर देने वाले इस पशु को देख कर काल के मुंह से राल टपक रही थी। यह बलि पशु अब कुछ ही क्षणों का मेहमान था। अद्भुत था वह मृत्यु का भव्य प्रदर्शन।

आर्य लोग अग्नि के पूजक थे। अतः वैदिक काल से ही यज्ञ-कर्म को आध्यात्मिक भारत का एक विशिष्ट स्वरूप माना गया है। यज्ञों के अनेक भेद उपभेद हैं। रामके अश्वमेघ और युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ की कथा अजानी नहीं है। जीवन के कई संस्कारों के साथ विभिन्न रूप में ये अग्नि होत्र आज भी हमारी संस्कृति के साथ जुड़े हुये हैं, यह बात प्रथक है कि समय और परिस्थितियों के साथ इनका रूप परिवर्तन होता रहा है। बलि, यज्ञ का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। पशु बलि ही नहीं नर-मेघ यज्ञ भी होते रहे हैं जिनमें जीवित मानव का वध कर वासुदेव को प्रसन्न किया जाता था, ऐसे देवताओं को जो नर मांस से तृप्त होते हों देवता कहा जाये अथवा अन्य कुछ यह प्रश्न विचारणीय हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ नर मेघ की प्रथा सर्वथा लोप हो चुकी है साथ ही कानूनी अपराध भी है अब तो पशु बलि भी कम हो गई है।

मंत्रोच्चारण के साथ ऋषि गौतम ने संकेत किया, पलक झपकते ही एक खड्गधर ने तीक्ष्ण खाँडे में पशु का सिरच्छेद कर दिया। एक मर्म भेदी करुण चीख से वातावरण स्तब्ध हो गया था। बधिक के हाथ में रक्त स्नात खड्ग ऐसा लग रहा था मानो मृत्युदेव यम के कज्जल गिरि सदृश्य महिष की लप-लपाती अग्नि शिखा सम आरक्त जिव्हा हो 'यज्ञ पुरुष की जय' घोष से अवनि अम्बर गूँज उठे।

'बन्द करदो यह यज्ञ।'

सम्मलित स्वरों से भिन्न एक आदेशात्मक कठोर स्वर सुन कर सब जड़वत हो गये आहूति देने वाले पचासों हाथ उठे के उठे रह गये। यह आदेश देने वाले थे महाराज श्री अग्रसेन।

राजाज्ञा का उल्लंघन कौन करे? बिना कारण बताये महाराज आवेश में यज्ञ शाला छोड़ कर महल के अन्तर्गत प्रकोष्ठ में चले गये।

विस्मय में डूबा प्रबुद्धजन समुदाय जितने मुँह उतनी बातें करने लगा। अन्ततोगत्वा मुहूर्त टलता देख कर गौतम ऋषि ने महाराज के प्रिय लघुभ्राता शूरसेन को अग्रसेन जी को बुलाने हेतु भेजा।

महल के एक एकान्त कक्ष में महाराज श्री मस्तक को हाथों से थामें चिंतित मुद्रा में अर्ध मिलित नेत्रों से शैया पर पड़े थे। मनोव्यथा से उस सूर्यवंशी सम्राट का सूर्य सा दैदीप्यमान मुख-मंडल अतिम्लान हो गया था।

अग्रज को दुःखी देख कर अनुज का हृदय विदीर्ण हो गया। शनैः शनैः समीप जाकर बोले, 'भैया'!

हूं।

अब जी कैसा है?

जी को क्या हुआ है?

'तो फिर सहसा ही आप उठकर क्यों चले आये ? यज्ञ बन्द करने को क्यों कहा ?'

'मैं इस पाप कर्म में और योग नहीं दे सकता था शूर।'

'पाप कर्म ? क्या यज्ञ करना पाप कर्म है ?'

'यज्ञ पाप नहीं है ? यज्ञ में बलि देना पाप है। कितना सुन्दर, कितना पुष्ट पशु एक क्षण में मौत के घाट उतार दिया गया। मैं पूंछता हूं **क्या अधिकार है हमें किसी की जान लेने का जबकि हम एक मरी चींटी को भी जीवित करने की क्षमता नहीं रखते। उस ईश्वर की कृतियों को नष्ट करने वाले हम कौन होते है ? उन अबोले जीवों को भी अपनी भाँति जीवित रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता देना ही सच्ची मानवता है।**'

'यज्ञों में बलि तो आदि काल से ही होती आई है भैया यह तो यज्ञ विधान का एक अनिवार्य अंग है।'

'आदि काल से चली आने पर भी भूल भूल ही मानी जायेगी। आदमी जब जगे तभी सवेरा है। हमें अपने पूर्वजों की भूल का परिमार्जन करना है इस गलत परम्परा को तोड़ना है।'

'तोड़ देना महाराज। जैसा जी चाहे करना पर अभी तो चलिये इस अधूरे यज्ञ को तो पूर्ण होने दें, मुहूर्त टल रहा है अतिथि प्रतीक्षा में बैठे हैं, अपरिमित धन व्यय हो चुका है।'

'कैसी बातें करते हो शूरसेन ! गलती मालूम होने पर भी उस पाप पंक में और आगे बढ़ूं ? अपनी आत्मा पर और खून के दाग लगाऊं ? नहीं मैं उस अपवित्र भूमि में अब पुनः नहीं जा सकता।'

'अपवित्र भूमि ? आश्चर्य से शूरसेन ने अग्रसेन के वाक्यांश को दोहराया।'

"हाँ शूरसेन अपवित्र भूमि। यज्ञ जैसे पावन कर्म में रुधिर माँस-मज्जा, पशु का मुर्दा शरीर क्या ये सब अपावन नहीं है ?

'यों तो युद्ध भूमि को भी अपवित्र कहना पड़ेगा महाराज ! क्या वहाँ वध और हत्यायें नहीं होती ?'

नहीं वह वीर-भूमि है युद्ध में शत्रु को ललकार कर देश के हित के लिए वीर गति दे देना दूसरी बात है और इस प्रकार निहत्थे, निर्दोष पशु को निर्ममता से काट देना दूसरी बात। उस शौर्य पूर्ण कार्य की गरिमा से मस्तक ऊंचा हो जाता है और इस वधिक कर्म की लज्जा से पीढ़ियों तक गर्दन झुकी रहती है।'

'आपका कथन सत्य है पर इस यज्ञ के अपूर्ण रहने से गोत्र भी अधूरा रह जायेगा। महाराज !'

'रह जाये इस जागरण बेला की स्मृति में वह गोत्र भी आधा गोत्र कहलायेगा, लोगों को इससे प्रेरणा मिलेगी।'

'आपके उच्च विचारों ने मेरा भी हृदय परिवर्तन कर दिया है आर्य !'

'लेकिन.....'

'लेकिन कुछ नहीं शूरसेन! शुभ कार्य में किन्तु, परन्तु ही बाधा पहुंचाते हैं, अभी जाओ मंडप में घोषणा करो, गांव गांव में ढिंढोरा पिटवा दो कि हमारे राज्य में आज से ही पशु बलि का सर्वथा निषेध किया जाता है। जीव मात्र के प्रति दया और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'

'क्या शिकार भी वर्जित होगा देव ?'

'होना ही चाहिये, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि **भविष्य में न कभी अहेर खेलूँगा न मांसाहार करूँगा अर्थात क्षत्रिय होते हुये भी वैश्य धर्म का पालन करूँगा और अपने वंशधरों से भी अनुरोध करूंगा कि पशु पालन तथा वणिक वृत्ति को अंगीकार करें।**'

'जो आज्ञा महाराज !'

शूरसेन नतमस्तक होकर जाने लगा—

'महाराज ने रोकते हुए कहा ? सुनो शूर !'

'सभी अतिथियों और अभ्यागतों को दान दक्षिणा देकर ससम्मान विदा कर दो। यज्ञ स्थल को गंगा जल से धुलवाकर स्वच्छ करवाओ हम एक पक्ष तक निराहार रह कर इस अजाने पाप का प्रायश्चित करेंगे।'

'महाराज ?.....एक पक्ष तक निराहार ?' कातर बन्धु का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।'

भरत से भाई को गले लगाते हुये महाराज के नेत्रों से गंगा यमुना बह चली।

"इस हत्या का यह प्रायश्चित भी कम है, तात ! भीतर बाहर हर जगह मुझे उस मूक पशु की भयभीत आँखे पूछ रही हैं मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था ? मेरी हत्या करके तुम्हें कौनसा सुख मिला है ? मेरी आत्मा मुझे कचोट रही है, शूर ! मुझे शान्ति चाहिए ! मुझे शान्ति चाहिए !!"

विव्हल नरेश को शूरसेन क्या कह कर सान्त्वना दे ? व्यथित शैय्या पर गिरे अग्रसेन जी के चार करुणा कणों में उसे चार धुंधली आकृतियाँ दिखी कदाचित कालान्तर में वे ही बुद्ध, महावीर, ईसा और गांधी के नाम से अहिंसा के अवतार हुए।

● हवेली जो आधी रंगी रह गई

सम्पूर्ण मण्डी में शमशान सा सन्नाटा छा गया। सूरज की दूधिया रोशनी में जैसे सबके चेहरों पर रात की स्याही पुत गयी, पाँच-पाँच सात-सात के समूह में एकत्रित हो वणिक वर्ग दुकान-दुकान पर कानाफूँसी करने लगे मानो इस गम्भीर विषय पर खुले कण्ठ से कुछ कहने का किसी में साहस ही अवशेष न रहा हो।

प्रश्न बाजार की प्रतिष्ठा का था। सन् १९२० के आस-पास कुशान वंश के आधीन प्रख्यात नगर 'महम' अपने क्षेत्र की मानी हुई व्यवसायिक मण्डी थी। दूर-दूर के व्यापारी वहाँ नित्य प्रति लाखों का लेन-देन करते थे। आजकल के जयपुर के जौहरी बाजार और दिल्ली के चाँदनी चौक उसकी चहल-पहल के आगे फीके थे। किन्तु आज ? आज सदा दीवाली मनाने वाले उस बाजार को साँप सूंघ गया था। पाषाण की प्रतिमाओं के सदृश्य मूक श्रेष्ठीजन मण्डी के मध्य में खड़े हुये केशर से लदे ग्यारह सौ ऊँटों की लम्बी कतार को विस्फरित नेत्रों से देख रहे थे। केशर के सौदागर की व्यंग्य भरी ललकार "क्या महम की मण्डी में कोई इस माल का खरीददार नहीं रहा ?" रह रहकर उसके कानों में गर्म शीशा उँडेल रही थी।

इस प्रवासी व्यवसाई की चुनौती का उत्तर देने की सामर्थ्य वैभव सम्पन्न होने पर भी वहाँ किसी व्यापारी में नहीं थी। सौदागर अपनी आन पर अड़ा हुआ था जैसे वह माल बेचने नहीं बाजार की इज्जत खरीदने आया हो। "एक ही व्यापारी

को अपना पूरा माल बेचूँगा और उधार एक कानी कौड़ी रखूँगा नहीं।" इस दुधारी तलवार के सामने कौन ठहरता।

\+ + + +

बावन करोड़ी सेठ हरभजन शाह मण्डी की नाक थे। भगवती और महालक्ष्मी की उपासना और दान-पुण्य से निवृत्त हो वे काफी दिन चढ़े अपनी पेढ़ी पर आते थे। दुकान पर उनके चरण पड़ते ही बाजार के बुझते दीपक में तेल पड़ गया। कुछ प्रमुख व्यापारी शाह जी के सम्मुख आकर नत मस्तक खड़े हो गये। सम्पदा के सलिल से सरोजवत सदा प्रफुल्लित रहने वाले सहयोगी श्रेष्ठियों के चेहरे को बीमार चाँद की तरह पीले पड़े हुये देख कर सेठ स्तब्ध रह गये। पूछा—"क्या बात है?"

कौन दे इस जलते प्रश्न का उत्तर?

प्रतिष्ठा पिशाचनी ने जिनके कण्ठ भींच रखे थे वे बोलें तो बोलें कैसे?

व्यवसाय का बातों से गहरा सम्बन्ध है।

लाखों रुपयों का लेन-देन जिन महाजनों की जीभ पर चलता है। उसकी गज भर जिव्हा को यों तालू से चिपका देख कर हर भजन शाह के आश्चर्य की सीमा न रही।

पुनः पूछा "आखिर हुआ क्या? क्या बाजार में आग लग गई? क्या दिन दहाड़े मण्डी में डाका पड़ गया?"

किसी ने चुपके से कोहनी मार कर, किसी ने आँखों में घुड़क कर, किसी ने कुरता खींचकर और अन्त में एक व्यापारी ने सकुचाते हुये बोलने का साहस उत्पन्न किया। उसके सारी कथा सुना देने पर आगन्तुक श्रेष्ठिवर्ग ने हाथ जोड़ कर एक स्वर से कहा। "आज इस बाजार की लाज आपके हाथ में है। महम के इतिहास में आज तक ऐसा न हुआ कि कोई व्यापारी इस मण्डी से निराश लौटा हो।"

"अब भी नहीं लौटेगा।" हरभजनशाह की गम्भीर वाणी ने उन जीवित मुर्दों में मानों प्राणों का संचार कर दिया। मुस्कराते हुये उन्होंने मुनीमजी से कहा, जाओ उस सौदागर से सारा माल खरीद कर गोदाम में डलवा दो और उसका मुँह माँगा मूल्य रोकड़िये से दिलवा दो। आदेश पा मुनीम ने प्रस्थान किया।

शीतल सुगन्धित मधुर पेय तथा ताम्बूल से अतिथियों की अभ्यार्थना करते हुये हरभजन शाह उन्हें कह रहे थे। "केशर बहुत अच्छे अवसर पर आयी है। नदी तट वाली मेरी विशाल हवेली के निर्माण का कार्य लगभग पूर्ण ही है, दो चार दिन में उसमें रंगरोगन प्रारम्भ करवाना था, इतनी केशर से आराम से काम चल जायेगा। अग्रवालों का ध्वज केशरिया, उनकी पगड़ी केशरिया, और उनकी हवेली भी केशरिया" बोलते-बोलते शाह जी स्वयँ खिलखिला पड़े उनकी हँसी में साथ देते, उनके अतुल धन और उदार मन का यश गाते महाजन लोग विदा हुये।

विविध रूप धारण कर सुरसा के मुख और द्रोपदी के चीर की तरह यह घटना पंख लगा कर सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त हो गयी। जो सुनता दाँतों तले उँगली दबाता, वाह-वाह कह उठता।

\+ + +

महम के समीप ही (जो वर्तमान में पंजाब के हरियाणा प्रदेश में हासी-हिसार के पास ही स्थित है) दुल्हिन की तरह सजी सवरी एक सुन्दर नगरी थी नाम था "सिरसा"। अपनी केशर बेचकर सोने चाँदी के सिक्कों से भरे ऊँटों का काफिला लिये वह व्यापारी लौटते हुये मार्ग में सिरसा के सेठ श्री श्रीचंद के यहाँ भोजन विश्राम के लिये ठहरा। श्रीचंद पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की पूर्ण कृपा थी। दोनों विरोधी बहिनों का इस प्रकार गले मिलना बहुत कम देखा जाता है उनकी तराजू

और कलम बराबर चलती ही रहती थी। उनकी रचनाएँ स्वान्तः सुखाय थी, वे साहित्य का नहीं हीरे जवाहरात का व्यापार करते थे!

श्रीचंद के रसोवड़े में सुस्वादु भोजन का आनन्द लेते हुये दोनों व्यवसायिक मित्र परस्पर वार्तालाप करते जा रहे थे।

श्रीचंद की धर्म-पत्नी बड़े स्नेह और आग्रह से दोनों का आतिथ्य कर रही थी। अपनी बातों के दौरान में केशर के व्यापारी ने महम के सेठ हरभजन शाह की धन सम्पदा और दिलेरी की बहुत प्रशंशा की। उनकी रईसी और रंगीन तबियत का बखान करते-करते जैसे उसकी जिव्हा विश्राम ही नहीं लेना चाहती थी "जो शख्स अपनी हवेली रंगने के लिए ग्यारह सौ ऊँट असली काश्मीरी केशर की खरीद कर एक मुश्त उसके दाम दे सकता है उसकी सेठायी का क्या कहना। वरना आज सारे महम के बाजार को मैंने हिला दिया था।" खीर से सनी अपनी मूंछों पर उसने ताव दिया।

हवेली रंगने के लिये इतनी मूल्यवान केशर खरीदी जाने की बात सुनकर जहाँ सेठ श्रीचंद को आश्चर्य था वहाँ उसकी पत्नी ने व्यंग और घृणा से मुस्करा दिया। स्त्रीयोचित स्वभावानुसार वक्रोति तथा व्यञ्जना का सङ्गम करती हुयी बोली **"ऐसे ही धन्नासेठ हैं तो पहले अपने पूर्वजों के खंडहरों का तो उद्धार करलें तब रहे ऐसी शानदार हवेली में वर्ना धिक्कार है।"**

श्रीचंद के हाथ का कौर हाथ में रह गया। वे अग्रवाल वैश्य थे। सन् ३२६ ई० पूर्व गोकुलचन्द सेनापति की गद्दारी के कारण यूनान के क्रूर आक्रान्ता शाह सिकन्दर द्वारा उनके वंश के प्रवर्तक महाराजा श्री अग्रसेन जी द्वारा बसाया गया अग्रोहा नगर विध्वंश हुआ था।

युद्ध के आतंक से प्रजा अपना नगर छोड़ कर आस-पास के

गाँवों में बस गयी थी पुरुखों की इस उजड़ी नगरी को देख कर उनकी आत्मा सदा दुखी रहती थी पर उसका जीर्णोधार उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी।

वाचाल स्त्री के बोल की तीक्ष्णता ने श्रीचंद के उस घाव को कुरेद दिया उनके चेहरे पर एक अद्वितीय भाव साकार हो उठा। अब वे रसोवड़े में नहीं किसी कल्पना लोक में थे, अब उनका शरीर नही उनकी आत्मा भोजन कर रही थी। यह वो सुनहरी क्षण थे जब किसी कविता के प्राण प्रसव लेने को छट-पटा रहे होते है।

सुमुखी के बहुत आग्रह करने पर भी अब कोई कुछ ले न सका। वैसे भी वे क्षुधा भर भोजन कर चुके थे फिर भी भोजन के समय ऐसी चर्चा चल पड़ने का सुमुखी को दुःख हुआ। साथ ही प्रसन्नता भी, कारण कि अपने पति को भली भाँति पहिचानती थी समझ गयी कि आज इनकी लेखनी अवश्य रंग लायेगी।

आचमन कर चुकने पर थके हुये सौदागर के लिये अतिथि गृह में विश्राम की, और उसके ऊंटों के चारे-पानी की व्यवस्था कर दी गई। सेठ श्रीचंद अपने निजी एकान्त में जा बैठे दोनों ही मित्र स्वप्नों में खो रहे थे किन्तु एक जाग रहा था एक सो रहा था, एक सोने चाँदी के स्वप्न देख रहा था, एक पूर्वजों की भूमि के उद्धार का।

\+ \+ \+ \+

यह कहना कठिन है कि नगर सेठ हरभजन शाह लक्ष्मी के दास है या लक्ष्मी उनकी दासी। सैकड़ों सेवकों के होते हुये भी चतुर श्रेष्ठी स्वय अपनी देख रेख में उस नौखण्डी हवेली में केशर की पुताई करवा रहे थे। शीशों की छत में संगमरमर की फर्श पर जड़े हुये हीरे जवाहरातों का प्रतिबिम्ब सहस्त्र मुखी होकर झिलमिल झिलमिल कर रहा था। बीच-बीच में स्वर्ण रजत के गँगा जमुनी मीने कारी से युक्त स्तम्भो पर बने

बेल-बूटों की छटा कैलाश से निसृत निर्मल झरनों की शोभा दे रही थी।

अभी ऊपर की तीन मंजिल ही रंग पायी थी, चौथी का काम आज प्रारम्भ होने को था, उगते सूरज की केशरियाँ किरणें हवेली के केशरियाँ रंग में एकाकार होकर अनुपम रूप राशि बिखरा रही थी मानो भगवान सूर्य अपने वंशधर हरभजन शाह से अति प्रसन्न हो अपने अगणित किरण करों से उसे शुभाशीर्वाद दे रहे थे। केशर की महक के साथ-साथ उनका यश दशों दिशाओं में व्याप्त हो रहा था।

साहर अभिवादन कर बहुत नम्रता से सेठ श्रीचंद के एक सेवक ने हरभजन शाह की सेवा में अपने स्वामी का पत्र प्रस्तुत किया।

कोई व्यवसाय सम्बन्धी बात होगी यह सोच कर शाह जी ने सेवक के अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा "इस पत्र को मुनीमजी के पास ले जाओ वे देखकर उचित कार्यवाही कर देंगे।"

"रूबरू आपको ही अर्पित करने का आदेश मिला है" सेवक ने पुनः हाथ जोड़ दिये। पत्रवाहक की ओर विस्मय से देखते हुए शाहजी उसे पढ़ने लगे। साधारण शिष्टाचार की औपचारिक बातों के बाद जो कुछ उन्होंने पढ़ा उसका एक-एक शब्द उनके हृदय पर हथौड़े का आघात करने लगा।

एक-एक वाक्य को पता नहीं उन्होंने कितनी बार पढ़ा उनके प्रभावशाली चेहरे पर हरक्षण अग्नि की एक तप्त पर्त आती जाती थी। सम्मुख खड़ा सेवक इस तेज को सहन न कर सकने के कारण कुछ कदम पीछे हट गया। उसकी साधारण बुद्धि पल-पल बदलने वाली शाहजी के श्री मुख की इस रंगत का रहस्य समझ न सकी।

"बन्द करदो यह रंगाई" भीषण गर्जना से स्थूलकाय श्रेष्ठी की स्वांस धौंकनी सी चलने लगी। जैसे असेम्बली में सरदार

भगतसिंह ने बम का भयानक विस्फोट कर दिया हो। सहसा हुये इस धमाके से सेवक गिरते-गिरते बचा। कारीगरों की केशर से भरी हुई कूचियाँ जहाँ की तहाँ रुक गयी मानो किसी कुशल तान्त्रिक ने कालिया को कील दिया हो। अस्फुट स्वरों में बड़-बड़ाते हरभजनशाह अपनी गद्दी की ओर चले। अदृश्य बन्धन से बँधा हुआ वह सेवक उनका अनुगमन करने लगा। बार-बार कानों में पड़ने से जो वाक्य उसके समझ में आये वे ये थे 'चूहे को हल्दी की गाँठ मिल जाने से वह पंसारी नहीं हो जाता। धन तो वेश्याओं के पास भी होता है परन्तु उससे उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती, धन का सद्‌पयोग न करने पर सर्प मे और मनुष्य में क्या अन्तर है मेरी पितृ भूमि मुझे बुला रही है मुझे जाना ही होगा! मुझे जाना होगा!!"

दुकान पर पहुँचकर कर हरभजनशाह ने मुनीम जी से कहा "एक तीव्र गामी रथ पर इस संदेशवाहक को सिरसा भिजवाने की व्यवस्था की जायें"।

'जाओ सेवक सेठ श्रीचंद से कहना हरभजन आपका अत्यन्त आभारी है, इस रथ पर सवार होकर तत्काल महम चले आवे।'

"जो आज्ञा श्रीमान्" कहकर सेवक ने प्रस्थान किया। कुछ देर पश्चात् मुनीमजी ने लौट कर निवेदन किया रथ भिजवा दिया गया है आप हवेली पधार कर भोजन करें सेठानी जी प्रतीक्षा कर रही हैं। काफी देर हो चुकी है।

नहीं मुनीमजी अब भोजन अग्रोहा पहुँच कर ही करेंगे। कुछ भी न समझ कर मुनीम शाहजी की मुख मुद्रा देखता रह गया।

\+ \+ \+

श्रीचंद ने आकर जो कुछ देखा उसे अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। इतना शीघ्र ये सब कुछ हो जायगा—उसकी लेखनी में इतनी शक्ति है ये उसने कभी सोचा भी नहीं था। हरभजन

शाह की विशाल सुसज्जित रंगशाला में महम के छोटे-बड़े सभी अग्रवालों की एक वृहत सभा जुड़ी हुई थी। हरभजन शाह कह रहे थे "भाइयो ! बहुत दिन हम अन्धकार में रहे, अपने और अपने परिवार को अधिकतम सुख पहुँचाने अपनी सम्पदा, अपना सम्मान बढ़ाने में इस प्रकार डूबे रहे कि मातृभूमि और पूर्वजों को प्रतिष्ठा की ओर ध्यान ही नहीं दिया किन्तु "सामने ही खड़े श्रीचन्द को देखकर शीघ्रता से आगे बढ़ उन्हें गले से लगाते हुये बोले - "किन्तु श्रीचंद भाई के पत्र ने आज मेरी आँखें खोल दी हैं - मेरे अहं को इन्होंने चूर-चूर कर दिया है। अग्रोहा के जिन मनोहर महलों में प्रातःस्मरणीय महाराजा अग्रसेन निवास करते थे आज वह भूत चुड़ैलों का डेरा है, अगरवत्ती धूप से सुवासित उन रनवासों में उल्टा लटकी हुई चमगादड़ों की दुर्गन्ध व्याप्त है, जिनके तोरण द्वार पर नौबत शहनाई बजा करती थी वहाँ उल्लू बोल रहे हैं, छत्र चँवर की जगह मकड़ियों के जाले झूल रहे हैं और हम हः हः हः हः हम केशर के महलों में रहने की योजना बना रहे हैं।" कण्ठ के कम्पन ने उनका आवेष कुछ कम किया, करुणामयी वाणी में फिर से सेठजी ने कहा **हमारी संस्कृति, हमारा इतिहास, हमारी गौरव गाथा, सब कुछ इन खण्डहरों के नीचे दबी पड़ी है, हमारे पुरुखों की आत्मायें वहाँ भटक रही हैं—हमें राजा भागीरथ की तरह प्रयत्न करना है उनकी आत्मा को मुक्त करना है ?"**

पर बन्धुओं यह काम समाज का है अकेला हरभजन शाह कुछ नहीं कर कर सकता। एक चीटी के लिये गुड़ की भेली ले जाना असम्भव है। इस जाति की जाजम पर आज अपनी धोती फैला कर मैं सबसे भिक्षा माँगता हूँ कि इस पुण्य पर्व में तन, मन, धन से मेरा साथ दे।

कहते कहते शाहजी के नयनों से दो मोती ढुलक कर उनकी झोली में गिर पड़े—ये वो मोती थे जिनका मूल्य संसार की कोई शक्ति नहीं चुका सकती।

उन्मत्त होकर सारी सभा चिल्ला पड़ी "हम सब आपके साथ हैं। हमारा सर्वस्य अग्रोहा के जीर्णोद्धार के लिए सहर्ष समर्पित हैं।

"मुझे आप लोगों से यही आशा थी—आदमी जब जगे तभी सबेरा है। आपके सहयोग ने मेरा उत्साह चौगुना कर दिया है। मैं आज आपके समक्ष कुल देवी लक्ष्मी की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक अग्रोहा को पुनः न बसा लूँगा तब तक सर पर पगड़ी और पाँव में जूते नहीं पहनूँगा, सोना, चाँदी के बर्तनों में भोजन नहीं करूँगा, शैया पर पाँव नहीं धरूँगा, और मुँह पर मूँछ नहीं रखूँगा।"

महामाया लक्ष्मी की जय ! अग्रसेन महाराज की जय !! सेठ हरभजनशाह की जय !!! के गगन भेदी नारों से सारा महल गूँज उठा।

"मेरी जय नहीं भाई श्रीचंद की जय, न वे मुझे प्रेरणा प्रद कविता लिखते न ये शुभ दिन आता, मैं ही नहीं सम्पूर्ण अग्रवाल जाति और आने वाली पीढ़ियाँ इनकी चिर ऋणी रहेगी, हम इनका हृदय से आभार प्रदर्शित करते हैं।

सेठ श्रीचंद आनन्द की उस मधुमति भूमि में विचर रहे थे जहाँ न कुछ दिखाई देता है, न सुनाई पड़ता हैं। जब सेठ हरभजन शाह ने अपनी पगड़ी उतार कर श्रीचंद के मस्तक पर धरदी तब वे सचेत हुये जैसे सोते से जग हो, बोले "क्या कहूँ—कहने को शब्द थोड़े पड़ते हैं—मात्र भूमि की पीड़ा से पागल होकर इस अल्पज्ञ ने अपनी औकात भूल कर न जाने क्या-क्या कटु-वचन शाहजी को लिख डाले पर धन्य हैं इस महापुरुष को जिसने

उदारतापूर्वक न केवल मुझे क्षमा किया अपितु मेरा मान बढ़ाया—अब मेरा स्वप्न निसन्देह साकार होगा, मुझे इसकी कितनी प्रसन्नता है यह मैं वर्णन नहीं कर सकता सेठ जी ने अपने भाषण में मुझे जो कुछ श्रेय दिया है, यह उनका अपनत्व और बड़प्प है फिर भी इसमें कुछ भी सत्यता हो तो इसकी उत्तरा-धिकारिणी है मेरी पत्नी सुमुखी, उसी के वचन वाणी से प्रभावित होकर मैं ये सब लिख पाया था। जिसका सुनहरा परिणाम बन्धुओं के समक्ष है।

\+ \+ \+

आज आश्विन शुक्ला एकम् है— अग्रसेनजी का जन्म दिवस। सेठ हरभजन शाह ने नगर-नगर में जो ढिढोरा पिटवा दिया था कि जो भी अग्रवाल बन्धु अग्रोहा छोड़कर अन्यत्र जा बसे हैं पुनः आ बसने के लिये आव्हान है, उनका स्वागत है उन्हें जीवन की सारी सुख सुविधायें यहाँ उपलब्ध होंगी— व्यवसाय करने के लिये जितना ऋण चाहेगा मैं उन्हें दूँगा। इस घोषणा के बाद कौन ऐसा अभागा था जो अपनी मातृभूमि म न लौटे अतः ठठ्ठ के ठठ्ठ अग्रवाल वहाँ आकर बसने लगे।

कुछ काल पूर्व जिस उजाड़ क्षेत्र में मलवे का ढेर लगा था जीर्ण भवनों के कंकाल प्रेत अट्टाहास किया करते थे उधर से निकलते यात्री दिन में भी भय खाते थे आज वहाँ किसी चतुर द्वारा चितेरे विचित्र अनुपम दृश्य दिखाई देते थे—३६ मील के घेरे में सुदृढ़ प्राचीन एक लाख परिवारों के रहने योग्य योजना बद्ध सुन्दर भवन, बाजार, सड़कें, वृक्ष, सुरम्य उद्यान विशाल विद्यालय, चित्रशालायें, कला-भवन, निर्मल जलाशय, चिकित्सालय, धर्मशालायें, महल, किले आदि से युक्त अग्रोहा नगर में ओ३म् स्वाह ! ओ३म् स्वाह !! के वेद मन्त्रों की कर्णप्रिय ध्वनि सुनाई दे रही थी। यज्ञ में यजमान बनकर इन्द्र

और शचि से बैठे थे सेठ श्रीचन्द और उनकी स्त्री सुमुखी। महालक्ष्मी के मन्दिर का प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव समाप्त होने पर श्रेष्ठि हरभजन शाह ने "श्री अग्रसेन स्मारक" नभचुम्बी अट्टालिका का उद्घाटन किया—अठारह पुत्रों से युक्त स्वर्ण रचित महाराजा श्री के चित्र का अनावरण व माल्यार्पण हुआ। उपस्थित जन समुदाय ने जयघोष के साथ पुष्प वर्षा की विभिन्न कक्षों में अग्रसेन जी के पवित्र छत्र, चंवर, कोरीट कुण्डल, वस्त्र-भूषण, अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित थे जिन्हें देख-देख दर्शक अति प्रसन्न हो रहे थे।

उधर भगवान भास्कर अपने रथ को लिये हुये जब ठीक आकाश के मध्य में पहुँचे तब इधर तुरही नाद के साथ साथ हरभजन शाह ने उसी केशर के रंग में रंगे अग्रवालों के प्रिय केशरिया ध्वज का अरोहण किया, आदेश पा सभी ने एक साथ यथा विधि प्रणिपात कर ध्वज के प्रति सम्मान प्रकट किया।

इस अवसर पर हरभजन शाह ने सबको धन्यबाद दिया कि "आप सब लोगों के अटल परिश्रम, त्याग और लगन से यह शुभ दिन देखने को मिला मेरा ऐसा विचार है कि इस नगर में एकतन्त्र शासन न होकर गणतन्त्र हो, मैं अठारह गोत्रों के नाम से इसे अठारह गणों में विभक्त करता हूँ, प्रत्येक गोत्र द्वारा निर्वाचित एक एक व्यक्ति उस गण का मुखिया होगा और उन अठारह मुखियों के ऊपर एक चौधरी अथवा गणपति होगा। इस प्रणाली से सब अति प्रसन्न हुये। तत्काल १८ मुखिये चुन लिये गये एक मत से उनका चौधरी चुना गया सेठ हरभजन शाह को।

सेठ जी के सर पर पगड़ी पहनाते हुये दीवान श्रीचन्द जी कह रहे थे "सज्जनो ! अब सेठ हरभजन शाह बावन क्रोड़ी सेठ नहीं हम लोगों के ही समान है—अपना सारा धन अग्रोहा के

जीर्णोद्धार में लगा कर यहां तक की अपनी अधरंगी केशरिया कोठी को भी नीलाम कर जिस देश भक्ति का परिचय प्रस्तुत किया है, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। पहले आप धन में बड़े थे, अब पद में, पहले इनकी हुकूमत पैसे के दम पर थी अब प्यार और सेवा के बल पर, पहले वे केवल अपने लिये जीवित थे अब केवल समाज के लिये। गणपति के रूप में नगर की जनता की ओर से मैं इनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। उनके हाथ मजबूत करने के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ। और इस बात की शपथ दिलाता हूँ कि जीते जी अग्रोहा के गौरव-गुमान पर आंच न आने देंगे।

श्रीचन्द की लेखनी ने आज तक देश के गीत कोमल भावों का चित्रण तथा प्रकृति और परमात्मा का ही वर्णन किया है किन्तु आज प्रथम बार वह एक मानव का यशोगान करेंगी— जो मानव-मानव रहकर राष्ट्र पुरुष हो गया।

हर्षोन्नत विशाल समूह की करतल ध्वनि के बीच अपनी लेखनी सेठ हरभजन शाह के चरणों में सादर समर्पित करते हुए गद् गद् कण्ठ से कवि श्रीचन्द के मुख से माँ सरस्वती का अजय श्रोत्र प्रवाहित हो रहा था—

"जाति के संवारक, उजड़े अग्रोहा उद्धारक,
योद्धेय गण के प्रचारक, अग्र आपसा न अन्य है।
सूरज के वंश, अंश अग्रसेन राजन के,
जन में महाजन शाह हरभजन धन्य है॥

★

दो रईस जादे

दोनों रईस जादे अपनी-अपनी बात पर अड़े थे, बात कुछ नहीं थी पर बात बहुत बड़ी हो गई थी—बात थी केवल एक घोड़ी की। घोड़ी क्या थी मानो आसमान की ओर से धरती को भेजी गई सौगात थी, विधि की कला का उत्कृष्ट नमूना थी। घोड़ी का परिचय तनधनदासजी की घोड़ी नहीं था वरण तनधनदासजी का परिचय घोड़ीवाले तनधनदासजी था।

तनधनदासजी तत्कालीन प्रसिद्ध अग्रवाल सेठ जालीरामजी बंसल के वरिष्ठ पुत्र थे, कनिष्ठ थे कमलारामजी। श्रेष्ठी जाली-रामजी के धन, वैभव बुद्धि व प्रतिष्ठा का डका दूर-दूर तक बजता था, विशिष्ट कारणों से वे अपने पूर्वजों की भूमि दिल्ली छोड़कर सपरिवार हिसार आ बसे थे। प्राचीन युग में इसी के आस-पास का क्षेत्र अगोहा के नाम से जाना जाता था। उस समय हिसार के नवाब झडचन्द थे, झडचन्द ने जालीरामजी की ख्याति से प्रभावित होकर हिसार में न केवल उनका स्वागत किया अपितु अपने राज्य का दीवान बना दिया। इन्हीं नवाब साहब के सुपुत्र दीवान जालीरामजी के सुपुत्र तनधनदासजी उस देव दुर्लभ घोड़ी पर लट्टू हो गये।

तो बात यह थी कि एक रईस जादा घोड़ी का स्वामी था, और वह उसका स्वामित्व किसी भी मूल्य पर छोड़ना नहीं चाहता था। दूसरा रईसजादा स्वामी नहीं था पर ऐन-केन

प्रकारने घोड़ी का स्वामी बनना चाहता था। वैसे दोनों ही ऐसे सम्पन्न परिवारों से थे कि घोड़ी के मूल्य के प्रलोभन का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अनेक घोड़े घोड़ियाँ उनके अस्तबलों की शोभा बढ़ाते थे पर नवाब जादा समझता था कि तनधनदास हमारे दीवान का लड़का है अत: उसकी हर वस्तु पर मेरा अधिकार है, फिर ऐसी अद्वितीय वस्तु दीवान पुत्र के पास हो और नवाब पुत्र के पास न हो यह कहाँ तक उचित है ? इसके विपरीत तनधनदास यह सोचता था कि मेरे पिता राज्य की सेवा में है इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि मैं भी उनका मातहत हूँ, और मेरी वस्तु वे जब, जैसे चाहें मेरे अनचाहे ले लें। क्या नवाब का पुत्र अपनी मनपसन्द वस्तु किसी से भी अनाधिकार रूप से ले सकता है ? भावनाओं की इस रस्साकसी में दोनों ही भरसक जोर लगा रहे थे और रस्सा था कि टस से मस नहीं हो रहा था।

नवाबजादे ने अपने पिता से आग्रह किया कि वे दीवानजी को बुलाकर घोड़ी माँग ले। अनुभवी पिता ने पुत्र को काफी समझाया कि शासक शासित को कुछ दे या ले ? वे हमसे कुछ माँगे यह तो शोभाजनक हो सकता है पर हम स्वामी होकर सेवक के सामने हाथ पसारें यह कहाँ तक मर्यादायुक्त है। पर राजहठ तो राजहठ ही थी। घोड़ी के प्रेम में दीवाने मदांध हृदय ने पिता की एक नहीं सुनी किन्तु स्नेहशील पिता को इकलौते पुत्र की इच्छा रखने के लिए जालीरामजी के सामने झोली फैलानी पड़ी—जालीराम जानते थे कि तनधनदास को घोड़ी कितनी प्रिय है राजनैतिक दाँव पेचों से परिचित दीवानजी ने नम्रतापूर्वक करबद्ध हो नवाब साहब से कहा—'इस अकिंचन का सर्वस्व आपके श्रीचरणों पर न्यौछावर है घोड़ी तो बेचारी बहुत ही तुच्छ चीज है, पर उस पर मेरा नही मेरे पुत्र का अधिकार है, मैं उससे पूछकर ही उत्तर दे सकता हूँ। एक तरफ

पुत्र का प्रेम, दूसरी तरफ मित्र और स्वामी की याचना। दुविधा में पड़े जालीरामजी हवेली आये।

जालीरामजी ने पुत्र से पूछा। तनधनदासजी ने स्पष्ट कहा यदि यह पितृाज्ञा है तो स्वीकार है, राजाज्ञा है तो अस्वीकार।

जालीरामजी मुस्कराये, न यह पितृाज्ञा है न यह राजाज्ञा यह तो नवाब के नादान पुत्र की इच्छा मात्र है और मित्रता के नाते झड़चन्द ने मुझसे माँगी है।

नादान पुत्र की इच्छा नहीं नवाबजादा होने का दम्भ है—उसका अहं मेरे अहं के लिए चुनौती है। मैं प्राण देकर भी अपनी प्रिय घोड़ी नहीं दूँगा।

भावी अटल है जानकर जालीरामजी चले गये और नवाब को अपनी असमर्थता से अवगत करा दिया नवाब के प्रभुत्व को इससे कुछ ठेस तो लगी और वे चाहते तो राज्य शक्ति से उसे प्राप्त भी कर लेते पर वे न्याय प्रिय, समझदार और मित्रता को मान देने वाले थे साथ ही एक पिता को दूसरे पिता की परिस्थिति समझते देर न लगी अत: जहर का घूँट पीकर रह गये उन्हें इसमें अपनी सन्तान का ही दोष लगा जिसने अपनी अनुचित माँग से उन्हें दीवान के सामने छोटा बना दिया था।

नवाबजादे को जब पिता से निराशाजनक उत्तर मिला तो उसका राजमद कुचले नाग की तरह हो गया मन ही मन दृढ़ निश्चय किया—देखें अब ये घोड़ी कैसे तनधनदास के पास रहती है ?

क्रोध की अग्नि में पहले मनुष्य की स्वयं की बुद्धि का ही विनाश होता है नवाबजादे ने अन्य उपाय न देखकर अमावश्या की असित रात्रि में चोरी करके घोड़ी प्राप्त करने के असित कर्म का निश्चय किया। रात सांप की तरह सूँ सूँ सो रही थी अवसर देखकर नवाबजादा दीवार फाँद नंगे पाँवों तनधनदास के अस्तबल में प्रवेश कर गया। अपरिचित व्यक्ति को, अनियमित

समय पर, शंकित दृष्टि से आया देख घोड़ी हिनहिना उठी, सशंक तनधनदास तुरन्त जाग पड़ा, जगार देख नवाबजादा उल्टे पांवों भागा किन्तु कजा किसी को नहीं छोड़ती, तनधनदास ने निशाना साधकर अपना तीक्ष्ण भाला फेंका—बार अचूक रहा, भाला पीठ में से सीधा सीने में निकला नवाबजादे की इहलीला समाप्त हुई।

मरणासन्न नवाब पुत्र की चीख सुनकर जालीरामजी व हवेली के अन्य लोग शैया छोड़ छोड़ कर भगे, क्या हुआ ! क्या हुआ !! का शोर मच गया।

रक्त से सद्य स्नात नवाब पुत्र का शव देख चतुर जालीरामजी छण मात्र में सारी स्थिति भाँप गये। इस अनचीती दुर्घटना का क्या दुष्परिणाम होगा यह उनसे छुपा न रहा। वात्सल्य और मोह का प्रभाव वे जानते थे मित्र की मित्रता और राजा का न्याय तरुण इकलौते पुत्र के वध के सामने टिक पायेगा इसका उन्हें विश्वास नहीं था। उन्होंने रातों रात हिसार छोड़ देने का निश्चय कर लिया और अपने परिवार, स्वर्ण, रत्न और नकदी लेकर वे मध्य रात्रि में ही समीप ही झड़चन्द की विरोधी रियासत झुन्झुनु (राजस्थान के सीकर जिले में) के लिए प्रस्थान कर गये।

राज्य की सीमा से बाहर और वह भी शत्रुपुरी में चले जाने के कारण झड़चन्द जालीरामजी का कुछ बिगाड़ तो पाया नहीं तिल मिलाकर रह गया, पुत्र शोक से संतप्त चोट खाया हृदय अवसर की प्रतीक्षा करने लगा, पुत्र की तरह उतावलापन उसमें नहीं था वह ठन्डी करके खाना जानता था।

दिन जाते देर नहीं लगती, जालीरामजी झुन्झुनु में सानन्द अपना कारोबार करने लगे, उनके धन की जड़ें फूटने लगी—तनधनदास अब पूर्ण युवा हो चुका था अतः पिता ने उसका गौना (मुकलावा) करा देना उचित समझा। यह वह समय था

जब अल्प वयस्क शिशुओं के विवाह तो हो जाते थे पर वधू पीहर में ही रहकर बड़ी होती थी और जब दोनों यौवनावस्था को प्राप्त होते थे तब उनका गौना होता था अर्थात् पति पत्नी को विदा करा लाता था इस प्रकार उनका वैवाहिक ग्रहस्थ जीवन प्रारम्भ होता था।

तनधनदास का विवाह हिसार के पास ही महम (डोकवा) निवासी सेठ गुरसामलजी की रूप, शील, गुण सम्पन्न सुपुत्री नारायणीदेवी से हुआ था। नारायणी बाल्यकाल से ही वीर और सती नारियों की कहानियाँ सुनने में रुचि रखती थी उनके संस्कार उसमें घर करते जा रहे थे वह एक आदर्श भारतीय नारी का ज्वलन्त प्रमाण थी।

गौना भी छोटा मोटा विवाह ही होता है फिर रईसी चोचलों का तो कहना ही क्या पूरे लवाजमें के साथ तनधनदास जी अपनी ससुराल पहुँचे। साली, सलहजों की हंसी मसखरी, सास, श्वसुर की पहुनाई में कुछ दिन बड़े आमोद प्रमोद में कटे, आखिर विदा की शुभ घड़ी आ पहुँची, माँ का ममतालु आँचल आँसुओं से तर था, सखी सहेलियों की हिचकी और पड़ौसिनों के विदा गीत के साथ गुरसामलजी ने बहुत दान दहेज सेवक सेविकाओं के साथ पराया धन समझकर, पुत्री के सर पर हाथ फेर विदा किया।

पराये सुख से दुःखी होने वालों की संख्या संसार में कम नहीं है। ईर्ष्यालुओं और शत्रुओं ने जले भुने झड़चन्द को इसकी सूचना पहुँचाई कि आपका चिर प्रतिक्षित शत्रु आपकी सीमा में से सुरक्षित लौट रहा है इतना सुनतेही नवाब के प्रतिशोध की ज्वाला में घी पड़ा, बैर का विष उसके तन मन में व्याप्त हो गया। तत्काल कुशल सैनिकों को शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित कर योग्य नेतृत्व में तनधनदास पर आक्रमण करने भेज दिया।

बीहड़ा वन में विशाल अरिवाहिनी ने तनधनदास के छोटे से काफिले को जा घेरा। नववधू के साथ से तरुण रक्त और भी उबाल खा गया। अपने मुट्ठी भर अंगरक्षकों को लेकर तनधनदास ने जो तलवार चलाई है उसे देखकर शत्रु दंग रह गये। वणिक और तलवार का विरोधाभास जैसे आज सदा सदा के लिए मिट जाना चाहता हो। तनधनदास जिधर निकल जाता था उधर त्राहि ! त्राहि !! मच जाती थी किन्तु अकेला चना कहाँ तक भाड़ फोड़ता, जीत आखिर बहु संख्यकों की हुई वे योजनाबद्ध होकर, आक्रांता बनकर आये थे। सहसा हुए इस बाज झपट को रागरंग में डूबा तनधनदास कहाँ तक निभा सकता था लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुआ।

पति को परलोक गया देखकर नारायणी सिंहणी बनकर डोली से कूद पड़ी मेंहदी रचे हाथों में दो तलवारें लेकर उसने जो ताण्डव किया है उससे नर मुण्डों से धरती पट गई। दुर्गावतार इस रणचण्डी को देखकर झड़चन्द की सेना काँप उठी। कुछ तो देवी के हाथों बलिदान हुए, शेष प्राण बचाकर गौने की सम्पत्ति लूट पाट कर भागे। वैसे नवाब ने उन्हें तनधनदास की हत्या का जो कार्य सौंपा था वह तो पूर्ण हो ही चुका था अब व्यर्थ जान गवाना उन भाड़े के टट्टुओं को निष्फल जान पड़ा। घड़ी भर पहले जहाँ मारकाट मच रही थी अब वहां मौत का सन्नाटा था, अदृश्य का भेद कौन जाने।

नारायणीदेवी का सुन्दर सुकोमल शरीर क्षत विक्षत हो गया था पति की प्यारी घोड़ी भी कम घायल नहीं हुई थी दोनों के ही अंग अंग से रक्त गंगा प्रवाहित हो रही थी किन्तु नारायणी का तेजस्वी मुख मण्डल सहस्त्रों सूर्यों के समान दैदीप्यमान था, पीहर से साथ आये एक मात्र बचे सेवक राणा को सम्बोधित कर उन्होंने कहा।

"राणा काका ! शीघ्र चिता तैयार करो मैं स्वामी के साथ

सती होऊँगी, स्वर्ग में वे मेरे विना व्यथित होंगे।" धर्म मार्ग में बाधा कौन देता, देता तो चलती नहीं, अस्तु विदीर्ण हृदय स्वामीभक्त राणा ने शुष्क तरु शाखाओं से चिता चुन दी।

सोलह शृंगार करके तो षोडसी नववधू पीहर से विदा हुई ही थी उन्हें तैयार होते विलम्ब नहीं लगा अग्नि की प्रदक्षिणा कर पति की मृत देही गोद में ले वे प्रसन्नवदन चिता में जा बैठी। झर झर झरते नेत्रों से राणा ने अग्नि संस्कार किया। धू धू करती चिता लपटें गगन मण्डल को छूने लगीं, देखते ही देखते सुन्दर नव दम्पति के स्थान पर दहकते हुये अंगारे रह गये उनकी सुहागरात धरती पर नही स्वर्ग में मनी, यह पुण्य तिथि थी सम्वत १३५२ मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी मंगलवार। पता नहीं देवताओं ने सुमन बरसाए या नहीं, गन्धर्वों ने बाजे बजाए या नहीं, पर वृक्षों पर बैठे कीर कपोतों के क्रंदन से सारा अरण्य चीत्कार कर उठा,पक्षियों केलिए यह सब कुछ नवीन था, अस्वाभाविक था। इस सारी मर्मभेदनी घटना का द्रष्टा था एक मात्र राणा। मृतक के साथ जीवित सुन्दरी हंसते हंसते जल जाये यह सुनकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं फिर उस नीरव वन में जिस अकेले मनुष्य ने इसे भोगा है उसकी व्यथा की तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है। शिव की भाँति वृद्ध राणा ने सहर्ष इस विष का पान किया। वह नेत्र मूंदे हाथ जोड़े भक्तिभाव से चिता के पास खड़ा था, भाव विभोर राणा को ऐसा लगा जैसे उनकी गोद में खिलाई नारायणीदेवी साक्षात माँ दुर्गा बनकर उन्हें दर्शन दे रही है वह चरणों में लोट पोट हो गया, सती ने आशीर्वाद दिया, तुमने अन्तिम समय तक मेरा साथ दिया है अतः मेरे साथ साथ तेरा नाम भी लिया जायेगा और कहा 'हमारी अस्थियें सास श्वसुरजी के चरणों में पहुंचा देना।'

राणा ने जल छिड़क कर चिता को शीतल किया, अस्थियें

और भस्मि एक पात्र में भरकर, उसी घोड़ी पर सवार हो झुन्झुनु की ओर चल पड़ा, न मार्ग में राणा ने अन्न जल गृहण किया, न घायल घोड़ी ने दाना पानी।

सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही सेठ जालीरामजी, उनके पुत्र, परिवार के अन्य सदस्य व सेवक सेविकायें अगवानी करने के लिए नौबत शहनाई बजबाते बधावे गाते गांव की सीमा पर पहुँचे सबके चेहरों पर उमंग और उत्साह का सागर हिलोरें ले रहा था।

घोड़ी के घुंघरू बजे, उसकी परिचित टाप सुनाई दी, स्वागत के लिए हलचल मची, बहिन ने आरती का थाल संभाला पिता ने न्यौछावर करने के लिए स्वर्ण की थैली पर..... पर दूर से ही तनधनदासजी की घोड़ी पर एक म्लानमुख सेवक को सवार देख सबका माथा ठनका, दुनिया देखे जालीरामजी से छुपा नहीं रहा कि कुछ अमंगल हो गया है, कमलारामजी यह जानने दौड़े कि क्या हुआ है ?

अस्थि कलष लेकर मूक राणा नतमस्तक खड़ा हो गया, उसकी आँखों से गंगा यमुना बहती रही, जब कुछ संयत हो पाया तो उसने अविरुद्ध कंठ से सारी घटना कह सुनाई, गीत रुदन में परिवर्तित हो गए। प्रफुल्लित चेहरों पर उदासी पुत गई, रंग में भंग का यह करुण दृश्य अपने आप में अद्भुत था।

कौन, किसको सान्त्वना दे, सभी शोक सिन्धु में निमग्न थे जिस घोड़ी के लिए दो दो जवान रईसजादे, फूल सी कोमल नई दुलहिन और न जाने कितने वीर सैनिक स्वाहा हो गए आज वही उपेक्षित खड़ी थी कोई उसकी तरफ देख भी नहीं रहा था। तभी एक धमाका सुन सब चोंक उठे, घोड़ी धड़ाम से गिर पड़ी थी उसका शरीर छटपटा रहा था, मुंह से फेन निकल रहे थे लोग संभालने दौड़े तब तक उसने सदा सदा के लिए आंखें मूँद ली।

बुझे बुझे से जालीरामजी उठे, उन्होंने घोषणा की कि जिस स्थान पर अस्थि लिए घोड़ी ठहरी और शहीद हुई वहीं सती माता का एक विशाल मंदिर बनेगा, प्रतिवर्ष वहाँ धूमधाम से मेला लगेगा, अस्थि कलश की स्थापना कर दी गई, वर वधू को पहिनाने को लाई गई पुष्प मालायें श्रद्धांजलि बन कर अस्थियों पर चढ़ने लगी, राणा सती की जय, राणा सती की जय से गगन गूँज उठा। धीरे धीरे अपभ्रंश होते होते राणा सती का राणी सती हो गया।

कालान्तर में जालीरामजी के इसी अग्रकुल में १२ सतियें और हुईं जिनके नाम सीता सती, मादि सती, मनोहरी सती, मनभावनी सती, जयनाद सती, ज्ञानी सती, पुरा सती, पिरागी सती, उतमेला सती, टोली सती, बानी सती और अन्त में गूजरी सती। प्रथम सती नारायणी देवी और अन्तिम सती गूजरी सती की पुण्य तिथि भाद्र कृष्णा अमावस्या पर झुन्झुनु के इस मन्दिर में आज भी बड़ा भारी मेला लगता है। दूर दूर से लाखों यात्री आकर सती माता के दर्शनों का पुण्य लाभ करते हैं।

मन्दिर की प्रतिष्ठा का समारोह सम्पन्न हुए कुछ ही दिन बीते सती की शक्ति और चमत्कार की कथा विभिन्न रूप में गाँव गांव में व्याप्त हो गई। एक दिन एक नवाब साहब सामान्य नागरिक के वेश में लुकते छिपते वहां पहुँचे उन्होंने सती माता के चबूतरे की धूल आँखों पर लगाई उनके गालों पर दो मोती ढुलक आये वे पांव प्यादे जालीरामजी की हवेली पर पहुँचे सेठजी विक्षिप्त से अपनी बैठक में पड़ें थे, भड़चन्द ने जाते ही उन्हें अपने गले से लगाया दोनों पुराने मित्रों के नेत्रों से आँसुओं का बांध टूट गया मन का मैल बह गया, उपालम्भ, क्रोध, प्रतिकार कुछ नहीं रहा, रहा केवल निर्विकार मन। भड़चन्द ने

मौन तोड़ा, "जालीराम वापिस हिसार चलो मैं तुम्हें लिवाने आया हूं तुम्हारे लिए हृदय में स्थान नहीं होता तो यों शत्रु सीमा में प्रवेश करने का खतरा मोल नहीं लेता।"

जालीरामजी मुस्कुराये 'आपकी कृपा है नवाब साहब, पर अब वह दीवान मर चुका है, अब जो जालीराम है वह दीवाना नहीं दीवाना है स्वांसें पूरी कर रहा है।

जालीराम जब किसी भी भांति तैयार नहीं हुए तो लम्बी सांस खेंचकर झड़चन्द उठे, रानी सती माता के मन्दिर तक जालीराम उन्हें पहुँचाने आए, मंदिर में राणा गा रहा था—

हे आंधिया ने आंख्या देवें, कोढिया ने काया।
बांझड़ा ने बेटा देवें निर्धनिया ने माया।

म्हारी राणी सती
म्हारी राणी सती

= दिल्ली का दिल हिल गया

पचासों सेवक चारे पानी का प्रबन्ध करने में लगे हुए थे। खेमें गाड़े जा रहे थे, खेलियाँ बन रही थीं घोड़ों की हिनहिनाहट से धूरा पड़ाव गूँज रहा था, ऐसा प्रतीत होता था जैसे अग्रोहे में अश्वों का मेला लगा हो। तमाशबीन बच्चे किलक रहे थे, उत्सुकता वश आये ठट्ठ के ठट्ठ नागरिक चहल कदमी करते उन स्वस्थ पानीदार घोड़ों में कोई ईश्वर की रचना कौशल देख रहा था, कोई सौदागर का वैभव, सेवकों को घोड़ों के भाग्य से ईर्षा हो रही थी पशु आदमी से सेवा ले रहा था।

\+ \+

राज काज में व्यस्त चौधरी प्रमुख हेमराज के सम्मुख उपस्थित हो ड्योढ़ीदार ने दण्डवत् की "गणपति ! अरब प्रदेश का एक अश्व बिक्रेता दर्शनार्थ द्वार पर खड़ा अनुमति चाहता है।"

मस्तक हिलाकर हेमराज ने स्वीकृति प्रदान की—

आदेश पा चाकर चला गया।

ताम्बूल चर्बन करते हुए चौधरी प्रमुख प्रतिनिधियों से कह रहे थे "वणिक और सौदागर राज्य की शोभा ही नहीं आधार होते हैं। अग्रोहे का सौभाग्य है कि यहाँ की मण्डी विश्व विख्यात है।;'

लबादानुमा ढीला चोगा पहने, अरब के सौदागर ने प्रवेश कर तीन बार फर्शी सलाम किया।

सौदागर के वैभव की दुन्दभी बजाने वाली उसकी भव्य वेश-भूषा मूल्यवान अलंकार, शिष्ट व्यवहार व प्रभावशाली व्यक्तित्व मंत्रणाकक्ष की साज सज्जा तथा चौधरी प्रमुख का तेजस्वी स्वरूप देख कर फीके पड़ गए जैसे ऊँट पर्वत के पास आकर अपनी ऊँचाई के गर्व को न निभा सका हो। कारचोबी के मखमली गलीचों पर मसनद के सहारे मोतियों के सर पेच बाँधे चौधरी प्रमुख अधलेटी-अधबैठी मुद्रा में आसीन थे। ऊपर सोने का छत्र, चमर धारी अनुचर और समीप बैठे अन्य उच्च राज्याधिकारी, एक क्षण के लिए इस कल्पनातीत ऐश्वर्य को देख कर वह सकते की हालत में आ गया।

चौधरी प्रमुख मुस्करा कर बोले "अग्रोहा की ओर से हम आपका स्वागत करते हैं। कहो सौदागर? हमारे शासन में आपको कोई असुविधा तो नहीं है? राजस्व आदि के कर्मचारियों से किसी प्रकार का असन्तोष हो तो निसंकोच कहिए?

सौदागर सम्बोधन से सजग हुआ। १०१ अशर्फियाँ राज्य प्रमुख के चरणों में सम्मानार्थ समर्पित कर नम्रता पूर्वक बोला—

उसके अरबी भाषा में दिए गए उत्तर का अनुवाद राज्य के द्विभाषिए ने निम्न प्रकार किया।

'हे गणनायक? आपके सुशासन ने राम राज्य की कल्पना साकार कर दी है—आपके.....'

सौदागर कुछ आगे बोले इसके पूर्व ही हेमराज ने टोका **"मेरे सुशासन ने नहीं राज्य की गणतन्त्र प्रणाली ने। यहाँ 'मैं' या 'तुम' शब्द का प्रयोग नहीं होता राज्य के लिए 'हम' या 'हमारे' बोला जाता है।"**

सौदागर ने यह सुन रखा था कि यहाँ प्रजातन्त्र प्रणाली है पर परम्परागत शासन के दोषों से मुक्ति पाने के लिए ही अग्रोहा ने यह आदर्श पथग्रहण किया है, निश्चित अवधि पर

निर्वाचन करके योग्यतम् व्यक्तियों के हाथों में सत्ता सौंप दी जाती है पर उसे यह भ्रम था कि जहाँ राज्य के लिए सत्ता-धिकारियों का चुनाव होता होगा वहाँ अवश्य ही पदों की रस्सा-कसी के कारण परस्पर वैमनस्य व दलबन्दी तथा अल्पकालीन अधिकारों के कारण सीमित समय में ही सुखों का भोग कर लेने की मानवीय कमजोरी के कारण भ्रष्टाचार व अव्यवस्था होगी ही किन्तु ऐसा स्नेह, संगठन व सुव्यवस्था देख कर उसे दंग रह जाना पड़ा। बोला "अपराध क्षमा हो आर्य? मैं इतनी गहराई तक नहीं सोच पाया था।"

एक राज्य प्रतिनिधि ने हंसकर कहा "सौदागर समाजवाद हमारा मूलमन्त्र है। केवल कागजी विधान में अथवा कथन में ही नहीं व्यावहारिक जीवन में हम इस आदर्श को उतारते हैं उदाहरणतया यहाँ का नागरिक बनने के लिए जो भी अतिथि आता है उसे यहाँ के हर घर से दो ईंट और एक रुपया प्रदान किया जाता है जिससे वह सहज ही लक्षाधीशों की श्रेणी में आकर उनके समान हो जाता है।"

"इस अद्वितीय प्रथा की प्रशंसा करने के लिऐ शब्द थोड़े पड़ते हैं, दास निर्वचन है देव।" सौदागर ने शिष्टता प्रदर्शित करते हुए कहा।

बात समाप्त करते हुए हेमराज ने कहा "इस अभ्यर्थना के लिए हम आभारी हैं कहिए आपने किस कारण कष्ट किया?"

"प्रधान जी मैं अरब से ग्यारह सौ अश्व लेकर विक्रय के लिए चला था—इस मण्डी की ख्याति और आपके ऐश्वर्य को सुनकर सेवा में यहाँ चला आया—सूर्य के समान तेजस्वी बे दूधिया घोड़े बे मिशाल हैं। अरबी घोड़े और अबलक घोड़ियों की अनुपम जोड़ी जब चलती है तो ऐसा लगता है जैसे ईश्वर ने अपने हाथों से गढ़ा है। अपनी चीज की प्रशंसा करना अपने

मुँह मियाँ मिठ्ठू होना होगा, जब आप स्वयं चलकर देखेंगे तो श्री मुख से कहे बिना नहीं रहेंगे कि, सौदागर जो कुछ तुमने कहा था उससे बढ़कर पाया।"

'घोड़ों का क्या मूल्य है सौदागर ?" एक अन्य प्रतिनिधि ने पूछा।

'इनका जो भी मूल्य दिया जाये वह कम है सरकार, एक बार मेरा अनुरोध स्वीकार कर पधारने का कष्ट तो करें फिर आप स्वयं ही कह देंगे कि घोड़े अमूल्य हैं।'

हमराज मुस्करा पड़े 'सौदागर बात करने में तुम बड़े निपुण हो हम अपने राजकीय परामर्श से निब्रत भी हो चुके हैं चलिए अभी चलकर हम उन्हें देख लेते हैं व्यर्थ आज का काम कल पर क्यों टाला जाय।'

सिन्धु प्रदेश के शुक्लवर्णी सप्त घोड़ों के विशाल स्वर्ण रथ में तीन अन्य चौधरियों व सौदागर के साथ चौधरी प्रमुख ने पड़ाव की ओर प्रस्थान किया। ऊपर नीलाकाश में भगवान भास्कर अपने अश्वों की बलगायें सभाले तीव्र गति से पश्चिम की ओर प्रयाण कर रहे थे नीचे पृथ्वी पर उनके ही वंशज जैसे उनसे होड़ ले रहे थे।

'वाह सौदागर वाह ! वाकई तुम्हारे घोड़ लाजवाब हैं।' आठ पारखी नेत्रों को अश्वों की परख करने में बिलम्ब नहीं लगा। माल पसन्द आने पर मूल्य का विशेष प्रश्न नहीं रह गया सौदागर को धन की आवश्यकता थी शासकों को आवश्यकता थी अच्छे अश्वों की, दोनों अपनी अपनी इच्छित वस्तु पाकर प्रसन्न थे। ग्यारह घोड़ों पर मुहरें लाद कर, अग्रोहे के गुण गाते सौदागर ने सहर्ष प्रस्थान किया।

घोड़े राज्य की अश्व शाला में लाये गये—विभिन्न प्रतिनिधियों, राज्य कर्मचारियों व कुशल सैनिकों को उनके पद व

आवश्यकताओं को देखते हुए घोड़ों का वितरण कर दिया गया। यह राजकीय सम्पदा व्यक्तिगत संरक्षण में पृष्ठ पोषण पाने लगी।

अश्वों के अभाव की पूर्ति से अग्रोहा की सैनिक शक्ति और भी सुदृढ़ हो गई।

\+ \+ \+ \+

नये घोड़ें, उनके नये स्वामी और उनकी नई उमंगे। प्रतिनिधियों ने चौधरी प्रमुख के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि "क्यों न इन घोड़ों पर सवार होकर शिकार के लिये चला जाये इससे घोड़े चाल में आयेंगे। अभ्यास का अभ्यास और मनोरंजन का मनोरंजन।" प्रस्ताव में विरोध करने जैसा कुछ था ही नहीं अतः बात की बात में बात मानली गई।

राज भवन से ग्यारह सौ अग्रवाल सरदार जब अश्वों पर सवार होकर सज धज कर निकले तो दर्शकों से मार्ग अवरुद्ध हो गये वह दृश्य अपने आप में अभूत पूर्व था।

बीहड़ बनों में शिकार करते २ जब वे थक कर चूर हो गये तो वापिस राजधानी लौटने का विचार होने लगा बीच में ही गणपति ने एक और सुझाव रख दिया " हम लोग अहेर करते करते इतनी दूर निकल आये हैं कि दिल्ली बिल्कुल समीप आ गई, ऐसा संयोग बार बार नहीं आता—क्यों न वहाँ की सैर की जाये ?"

प्रसन्नता से सबके चेहरे खिल गये जैसे थकान कभी हुई ही नहीं थी सब में इतना स्नेह व सद्भावना थी कि एक की इच्छा सबकी इच्छा बन जाती थी फिर यह तो उनकी बहुत दिनों की अभिलाषा थी।

निश्चिय होते ही तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण तैयारियाँ करली गईं— मृग, व्याघ्र, सिंह सभी शिकार किये वन्य पशुओं के चर्म सेवकों

के साथ अग्रोहा रवाना करके दिल्ली की तरफ कूच का नगारा बजा दिया गया।

\+ + + +

घटना सन् ग्यारह सौ व्यासी की है उस समय दिल्ली में क्षत्रीय राजा अनंगपाल का शासन था। वह एक वृद्ध और शिथिल शासक था। पुत्र उसके कोई था नहीं मात्र दो कन्यायें थीं जिनमें से एक कन्नौज व्याही गई थी दूसरी अजमेर। कन्नौज वाली का पुत्र था जयचन्द और अजमेर वाली का साँभरी शेर पृथ्वीराज चौहान। महाराज अनंगपाल इसी द्विविधा में पड़े थे कि दोनों दोहत्रों में से उत्तराधिकारी किसे बनाया जाए? बड़े थे जयचन्द, योग्य थे पृथ्वीराज—अतः अधिकार और कर्तव्य के बीच अर्न्तद्वन्द हो रहा था। इतिहास साक्षी है कि निर्णय पृथ्वीराज के पक्ष में ही रहा—राज्य का विस्तार देखते हुए इसे उचित ही मानना पड़ेगा। जयचन्द तभी से चौहानों के शत्रु हो गये थे। प्रतिशोध लेने में स्वयं को असमर्थ पाकर द्वेशान्ध जयचन्द ने गौर के सुल्तान शाहबुद्दीन गौरी को रण निमन्त्रण देकर अपने ही मौसेरे भ्राता के विनाश हेतु बुलाया—विलासता और मद किसका पतन नहीं करते। अतः जिस पृथ्वीराज ने गौरी को अपने पराक्रम से सत्रह बार परास्त किया और क्षमा कर दिया उसी चौहान शेर को देशी और विदेशी दोनों शक्तियों ने मिलकर न केवल हराया किन्तु नृशंसता पूर्वक उसे नेत्रहीन करके अपनी पुत्री संयोगिता का सिन्दूर सदा सदा के लिए पोंछ दिया—जयचन्द के विद्वेष का यह भी एक कारण था कि पृथ्वीराज ने उसकी कन्या के चाहने पर स्वयंवर से उसका हरण कर विवाह कर लिया था पर वाहरे शेर! नेत्रहीन होने पर भी शब्द-भेदी बाण चलाकर तूने उस आततायी गौरी के प्राण ले ही लिये।

चार बाँस चौबीस गज, अँगुल अष्ठ प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूके चौहान।

आदि कवि चन्द्र वरदायी के इस लोकप्रिय दोहे को कौन नहीं जानता। तभी से जयचन्द शब्द ही गद्दार का प्रतीक हो गया यह भारत के दुर्भाग्य और पराधीनता की पृथक से एक कथा है।

\+ + + +

तो अनंगपाल मन्त्रियों के साथ बैठे सुरा ढाल रहे थे कि एक गुप्तचर ने प्रवेश कर हाँफते हुए घबराकर बिना अभिवादन किये कहना प्रारम्भ कर दिया "महाराज एक बहुत बड़ी अश्वारोही सेना राजमहल की ओर विद्युत गति से बढ़ी आ रही है।

वे कौन हैं? क्यों आ रहे हैं? कितना शैन्य बल है? आदि प्रश्न जब तक महामात्य पूछे तब तक तो अनंगपाल ने भागकर रनवास में शरण ली। आमात्य के प्रश्नों का उत्तर गुप्तचर भी न दे सका। कोई योजना बद्ध कार्य होता, आक्रमण का अन्देशा होता तब तो गुप्तचर उन्हें जानते भी, पर बिना सम्भावना के अनायास घटी घटना का राज कौन जान सकता था? राजा के भागते ही अन्य लोगों का भी हौसला पस्त हो गया बगैर तैयारी का समय दिये मौत सर पर सवार खड़ी दीखी, प्राणों का मोह किसे नहीं होता? मैदान साफ हो गया।

दनदनाते हुए घोड़े पवन वेग से आगे बढते चले—धूल के गुब्बार से दसों दिशायें व्याप्त हो गई, तोरण द्वार पर खड़े रक्षकों को फाटक बन्द करने तक की सुध बुध नहीं रही—कोई सैनिक, कोई सिपाही, कोई द्वारपाल अपने स्थान पर नहीं रहा सब गधे के सर से सींग की तरह लुप्त हो गये।

इस अनाथ नगर को देख कर जहाँ हेमराज और उनके

साथी आश्चर्य में थे वहाँ अनंगपाल, उनके आमात्यगण, सेवक और प्रजा सभी दंग थे कि केसरिया पगड़ी, हाथों में चमचमाती कृपाण, पीठ पर ढाल और रजतवर्णी अश्वों पर सवार ये अश्वनी कुमारों से आखिर हैं कौन ?

म्याऊँ का मुँह कौन पकड़े ? ये कौन है, इस प्रश्न का उत्तर लाये तो लाये कौन । मेरे लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि दिल्ली कोई छोटा मोटा राज्य था, अथवा धन, जन की शक्ति से हीन था। वास्तव में वह अपने आप में बहुत बृहद राज्य था किन्तु निवीर्य राजा के राज्य की शक्ति भी पंगु हो जाती है। वही हाल इस समय दिल्ली का था । भय का भूत भेड़िये को भेड़ बना देता है । संकट में राजा और सेवक सब एक होकर गुप्त छिद्रों से कौतूहल और डर से देखने लगे 'देखें अब क्या होता है ?

\+ \+ \+ \+

राजप्रसाद की ड्योढ़ी पर आकर सभी अश्वारोही उतर पड़े केवल ग्यारह चौधरियों को लेकर चौधरी प्रमुख ने गर्भागृह में प्रवेश किया, देखा रत्नजड़ित सिंहासन रिक्त पड़ा है—दरबार की पूरी सजावट है पर दरबारी नदारद । तमाशे से तमाशे का जन्म होता है। ये सब तमाशा देख कर उन्हें भी एक मजाक सूझा—मस्ती ही मस्ती में वे गम्भीर, अधेड़ और वृद्ध सत्ताधारी बच्चों की तरह खिलवाड़ करने लगे । जैसे खेल में हर बच्चा दाँव देता है शेष पिदाते हैं उसी तरह वहाँ वे अपने पदों की गरिमा भुलाकर समाजवाद का नाटक सा खेलने लगे—बारी-बारी से एक-एक सरदार सिंहासन पर बैठ कर राजमुकुट धारण करता शेष दरबारी बनकर उसका अभिवादन करते या कोई फर्जी वादी-प्रतिवादी बनकर मिथ्या मुकदमा करता ।

यह सब खेल देख कर राजा अनंगपाल और उनके साथियों

को और भी विस्मय हुआ कहीं लूटमार नहीं, आगजनी, खून खराबी नहीं, ये सब स्वप्नवत् क्या हो रहा है, आश्चर्य के कारण उनका कुछ कुछ भय भी कम हो गया—मुर्दों में वापस प्राण आने लगे ।

राजा ने खुशामद करके सेनाध्यक्ष तथा प्रधानामात्य को उनके पास भेजा । हीरे मोतियों की न्योछावर लेकर दोनों भीगी बिल्लियों की तरह उनके पास पहुँचे । भारत सम्राट महाराज अनंगपाल की ओर से ये तुच्छ भेंट श्री चरणों में समर्पित करते हुये हम हृदय से आपका स्वागत करते हैं किन श्रीमानों के दर्शनों का दिल्ली को सौभाग्य मिला है, कृपया परिचय दें उपकृत्य करें ?

एक चौधरी ने मुस्करा कर हेमराज की ओर इंगित कर कहा "आप अग्रोहा राज्य के गणपति हैं, हम सब वहाँ के चौधरी तथा प्रासाद के बाहर अन्य अमीर उमराव व अधिकारी गण है ।

हेमराज बोले 'हम शत्रु नहीं मित्र बन कर आये हैं। मृगया खेलने निकले थे भ्रमण करते-करते यहाँ तक चल आये। दिल्ली का बहुत नाम सुनते थे, आज पता चला ।

'शत्रु नहीं मित्र हैं' यह सुनते ही अनुचर ने नैपथ्य से प्रकट हो घोषणा की "महान प्रतापी दिल्लीश्वर महाराज अनंगपाल पधार रहे हैं" राजसी वेशभूषा में अंग रक्षकों सहित अनंगपाल ने कक्ष में प्रवेश किया—हेमराज तथा अन्य चौधरियों ने खड़े होकर उनका सत्कार किया । अनंगपाल चौधरी प्रमुख को गले लगाकर मिले सभी के यथा-स्थान विराजने पर अनंगपाल बोले नगर भ्रमण के लिए चला गया था अभी अभी लौटा हूं। आपको मार्ग में कहीं कष्ट तो नहीं हुआ ? पहले सूचना भेज दी

होती तो स्वागत का समुचित प्रबन्ध कर पाता, कहिये दिल्ली आपकी क्या सेवा कर सकती है ?

हेमराज ने कहा "आपकी कृपा है हम तो अहेर करते-करते यहाँ तक आ निकले थे आपके दर्शनार्थ चले आये।"

परम प्रतापी श्री श्री १०८ महाराजा श्री अग्रसेन जी के वंशधरों को अतिथि रूप में पाकर अनगपाल अत्यन्त प्रसन्न हुए बहुत आग्रह व सम्मान पूर्वक उनकी काफी पहुनाई होती रही तीन दिन बाद बड़ी कठिनाई से राजा अनंगपाल ने उन्हें पर्याप्त भेंट देकर सादर विदा किया।

जाते जाते हेमराज बोले।

"दिल्ली पर भीड़ पड़ने पर अग्रोहा को स्मरण करना"।

दिल्ली का दिल हिला देने वाली श्वेत अश्वों पर सवार, केसरिया पेचे बाँधे जाती हुई उस लम्बी कतार को अनंगपाल और उनके साथी खोई-खोई दृष्टि से देख रहे थे अपनी ही नजर में उन्हें दिल्ली छोटी लगी गणपति के अन्तिम शब्द रह रहकर उनके कानों में बज उठते थे "दिल्ली पर भीड़ पड़े तो अग्रोहा को स्मरण करना।

दवात पूजा

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला, या शुभ्र वस्त्रावृता।
या वीणा वरदंडित मंडित कला, या श्वेत पद्मासना॥

मंद मधुर स्वरों से माँ वीणा पाणि का पावन प्रांगण लयमय था। जगत् जननी ब्रह्माणी की शुभ्र वसना, स्फटिकी हंसारूढ़ सजीव प्रतिमा प्रकोष्ठ में अपनी कल्याण कारिणी स्मिति बिखरा रही थी, रत्न जटित स्वर्ण स्तम्भ घृत दीपावली से प्रतिबिम्बित होकर शहस्त्र गुणा जाज्वल्यमान हो रहे थे। अगरू की सौरभ, वातावरण को सुवासित कर रही थी यत्र तत्र बिखरी हुई पुष्पों की पंखुरियाँ अपने सौभाग्य को सराह रही थीं स्वर्ग में एक अनुपम स्वर्ग की सृष्टि थी। पूजारत थे भगवती भारती के चार अनन्य उपासक। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास रत्नाकर, मैथिली शरण गुप्त और बाबूजयशंकर प्रसाद मखमली, आवरण युक्त रजत चौकियों पर सम्मुख रखी थी उनकी अमर कृतियाँ "सत्य हरिश्चन्द्र, उद्धव शतक, साकेत और कामायनी" शारदा के चरणों में रखी थी कंचन की दवात और कलम।

वैश्यों के श्रेष्ठतम पर्व दीपमालिका का आज द्वितीय दिवस था। कार्तिक की अमावश्या को विष्णु प्रिया लक्ष्मी का अर्चन, पूजन आव्हान होता है, दूसरा दिन सरस्वती का, इसे दवात पूजा के नाम से जाना जाता है।

सहसा घंट ध्वनि से हुई दवात पर पुष्प, चन्दन चढ़ाते कवियों के हाथ रुक गये, देखा उनके पूज्य पितामह, अग्रवाल जाति के प्रवर्तक अग्रोहा नरेश छत्रपति महाराज अग्रसेन घंटा बजा कर प्रतिमा के सम्मुख प्रणि पात कर रहे है। चारों साहित्य सेवियों ने श्रद्धा से प्रणाम कर नृपति का स्वागत किया।

"नहीं ! नहीं !! उठने की आवश्यकता नहीं है, आप पूजन कीजिये।"

राजन स्वयं सम्मलित होकर पूजन करने लगे। वंदना के स्वर कुछ और तीव्र हो गये, कलम, तूलिका, वीणा, नूपुर सभी पर नैवेद्य चढ़ा, रक्षा सूत्र बांधे गये, सकल कला, ज्ञान, विज्ञान-दात्री सावित्री के जय घोष के साथ विधिवत् पूजन सम्पन्न हुआ।

प्रसाद ग्रहण करते हुये अग्रसेन ने मुस्करा कर कवियों को सम्बोधित किया "वरद पुत्रों ! आपने हमारा सम्मान कर हमें लज्जित ही किया है, कवि वंदनीय हैं, पूज्य हैं, अभ्यर्थना करने के अधिकारी तो हम हैं।"

उत्तर दिया भारतेन्दु ने "आप हमारे अग्रज हैं, पिता के सम्मुख पुत्रों का नत मस्तक होना मर्यादा का पर्याय है।"

"कभी कभी पुत्र पिता से ऊँचा उठ जाता है पिता को उससे ईर्षा नहीं होती आत्मिक सुख मिलता है, कवि सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता है, हमें ही नहीं सारे समाज को पूरे देश को गर्व है। वैश्य जाति का सौभाग्य है कि आप जैसे नर रत्न उसमें उत्पन्न हुये।"

"आप हमें संकुचित कर रहे हैं देव ! हम कुछ भी बन जाये, तो भी पिता पिता है, पुत्र पुत्र" गुप्त जी ने गद्-गद् होकर कहा।

"यह तुम्हारी नम्रता है वत्स ! हमने निर्जीव पृथ्वी के

सीमित क्षेत्र पर शासन किया है, आप लोगों ने असीमित सजीव मानव हृदयों पर। हम नहीं, केवल हमारा नाम इतिहास में जीवित है, किन्तु आप ? आप लोगों का सर्जित साहित्य प्रलय काल तक घर घर में चिरजीवी रहेगा—जीवन का संदेश देगा।"

"दास निर्वचन है महाराज" कर बद्ध रत्नाकर जी मूक न रह सके।

बिना विराम महाराज की भावुकता शब्द बन कर पिघलती रही। "आज भी भारतेन्दु रचित सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देखने की हमारी इच्छा बलबती हो उठती है, उसके संवाद, सत्य के प्रति निष्ठा, करुण हृदय किसे प्रभावित नहीं करेगें ? जिस साहित्यकार के नाम से हिन्दी के इतिहास में एक युग चला है, उसके महत्व को कौन नकार सकता है ? रत्नाकर जी का उद्धव शतक पढ़ कर कौन पाषाण रस विभोर नहीं हो जायेगा ? गोपियों के आँसू और तर्क में कौन नहीं डूब जाता ? ये प्रेम की जान्हवी कोई कलम का धनी ही बहा सकता हैं। और गुप्तजी ? उपेक्षिता नारियों के वकील, भारतीय संस्कृति के उपासक इस देश भक्त और रामभक्त कवि की प्रशंसा के लिये शब्द लायें तो लायें कहाँ से ? 'यशोधरा' की ये पंक्तियाँ—

"अवला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।"

हम अक्सर गुन गुनाया करते हैं कुल दो चरणों में नारी के सम्बन्ध में इससे बड़ी बात इससे सरल, सरस, और सहज शब्दों में कहना क्या दूसरे की सामर्थ्य है ? कोई कर सकता है हमारे प्रसाद की बराबरी ? कामायनी जैसे महाकाव्य का रचयिता, जिसने मानव जाति के विकास का वृत्त काव्य में रच डाला, है कोई दर्शन और प्रकृति का ऐसा अनूठा चितेरा ? जी चाहता है इस भावुक कोमल कवि की कलम को चूमलें।

"अपने चरणों की रज को गगन में पहुँचा दिया है स्वामी ? ये हमारी कला नहीं आपको गुण ग्राहकता है, हमारे प्रति मोह और अपनत्व है जो आपके इन अतिशयोक्ति पूर्ण अमूल्य वचनों का कारण बने।"

प्रसाद की कविता जैसे गद्य में ही चल पड़ी हो।

"बेटे बड़े हो जाने पर मोह और अपनत्व का भी तिरस्कार करने लगते हैं कवि।" महाराज की वाणी में व्यंग और मनोव्यथा दोनों साकार हो उठीं।

चारों कवियों ने चौंक कर अग्रसेन की तरफ देखा। चार मुखों से एक साथ एक वाक्य निकला। "हमसे कोई अपराध बन पड़ा है प्रभो ?"

"अपराधी यदि अपराध को अपराध मानने लगे तो करे ही क्यों ? क्या कल हमने आप लोगों को लक्ष्मी पूजन पर आमंत्रित नहीं किया ?"

सत्य की समीक्षा तो आप घुमा फिराकर कर सकते हैं पर उससे मुकरा नहीं जा सकता, चारों कवि बगलें झाँकने लगे। कुछ क्षण का मौन ही उत्तर देने से अधिक कठिन जान पड़ा। बोझिल वातावरण को सहज बनाते हुये सस्मित भारतेन्दु बोले—

"किया था महाराज" पर वह तो लक्ष्मी का पूजन था हम कवि साहित्यकारों का वैभव की आराधना से क्या सम्बन्ध ?"

"यह बात आपके मुख से शोभा नहीं देती भारतेन्दु जी राजा अमीचन्द के रईस घराने में उत्पन्न व्यक्ति वैभव से विरक्त हो, नहीं माना जा सकता।"

"विरक्ति और आसक्ति में अन्तर है देव।"

"हम इस अन्तर को समझते हैं, आपकी धन में आसक्ति नहीं है यह हम भली भांति जानते हैं पर आपने उस ऐश्वर्य को

भोगा है, और साहित्यकारों की सेवा में लगाया है क्या आप इससे इन्कार कर सकते हैं ? क्या आप परिवार और पेट की चिंता से मुक्त होकर जो साहित्य सृजन कर सके हैं वह धनाभाव में कर सकते थे ?

"कर सकता था तुलसी ने भी तो·····

बीच में ही बात काट कर अग्रसेन मुस्कराये "तुलसी से तुलना व्यर्थ है भारतेन्दु ! वह रत्नावली से चोट खाया गृह त्यागी था तुम जैसा अनुरागी नहीं। लंगोट लगा कर सन्यासी हो जाना सहज है, सामाजिक दृष्टि से अमान्य है पर गृहस्थी का भरण पोषण करते हुये सरस्वती की आराधना करना तलवार की धार पर चलना है। लक्ष्मी उस नौका को खेने वाली पतवार है।"

"आपके तर्क अकाट्य है महाराज ! फिर भी सरस्वती व लक्ष्मी दोनों बहिनों में कभी बनी नहीं।"

प्रसाद जी की बात का समर्थन और असमर्थन करते हुये अग्रसेन जी बोले, "आम तौर पर ऐसा देखा जाता है पर यह भ्रम है, इस रूढ़िगत मिथ्या धारणा का आप जैसे मेधावी भी निराकरण नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? इन दोनों में विरोध नहीं विरोधाभास है। राज्य या सम्पत्ति को लेकर भाई भाई में तो अनबन हो सकती है पर बहिनों का स्नेह तो अगाध होता है, निस्वार्थ पवित्र होता है उनकी लड़ाई भी प्रेम से परिपूर्ण मिठास से युक्त होती है। ये दोनों बहिने एक दूसरी के विपरीत नहीं परस्पर पूरक है, सहायक हैं। लक्ष्मी के बिना सरस्वती और सरस्वती के बिना लक्ष्मी कम ही देखी जाती है। क्या एक ही दीपावली पर्व पर तिजोरी और बही का साथ-साथ पूजन इनके समान महत्व का द्योतक नहीं है ? हम संस्कृति की लीक तो पीटते हैं पर उसकी आत्मा को नहीं

समझते, फिर आपके सम्मुख तो भारतेन्दु जैसे उदाहरण हैं जहाँ दोनों का अनूठा संगम है।"

महारथियों को मात खाते देख रत्नाकर जी ने मोर्चा संभाला। कटूक्ति करने में प्रवीण, वाचाल गोपियों वाली वाणी तो भला चुप कैसे रहती, बोले "आप लक्ष्मी पुत्र ही ऐसा नहीं कहेंगे तो कौन कहेगा ?"

"मैं लक्ष्मी का पुत्र अवश्य हूँ पर सरस्वती का दास हूँ। किस कलम के कारीगर के आगे हम नतमस्तक नहीं हुये ? हमारे राज्य में कवि जसराज के सम्मान से आप में से कौन अवगत नहीं है ?"

चारण कवि ? भाट ? जो अपनी माँ का सौदा करते हैं, कला की नीलामी लगाते है उनसे हमारी तुलना न करें तो अच्छा हो महाराज, हमें अभावों में जीना स्वीकार है पर राजाओं और श्रेष्ठियों की प्रशस्ति व विरुदावली गाना स्वीकार नहीं है।

"किन्हे सी प्राकृत-जन गुनगाना। सिर धुनि गिरा त्यागि पछिताना।"

सौम्य स्वभाव गुप्तजी का सुप्त आक्रोश जसराज का नाम सुनते ही उफान खा गया।

"शायद इसीलिये आप उन्हें अपनी कवि विरादरी में उचित स्थान नहीं देते ? ये घृणा, ये छोटे बड़े की हीन भावना किसी दिन विभेद की वो भित्तियाँ खड़ी करेगी कि लाख चाह कर भी साहित्यकार, साहित्यकार से मिल नहीं सकेगा।"

आक्रोष से आक्रोष का जन्म होता है। गुप्तजी के व्यंग से धीर गम्भीर महाराज भी आवेश में आ गये पर उनकी सहज शांत प्रकृति ने क्षण भर में ही नियंत्रण पा लिया। गर्म

लोहे को ठंडा लोहा काटता है, नीति निपुण अग्रसेन से यह बात अजानी नहीं थी। आत्मयिता से गुप्ताजी की पीठ पर हाथ धरते हुये उन्होंने स्वर को अपेक्षागत मृदुतर बना कर गतिमान रखा।

प्रलोभमन वश मिथ्या प्रसंशा या सामान्य व्यक्ति स्तुति के हम स्वयं भी निन्दक हैं पर कभी कभी विशिष्ट व्यक्ति व्यक्ति न रह कर राष्ट्र का प्रतीक हो जाता है, उसकी यशोगाथा राष्ट्र की वंदना है। छत्रपति शिवजी की श्लाघा में लिखे गये कवि भूषण, भूषण के कवित्त आज भी मृतकों में प्राणों का संचार करते हैं, कर्तव्य की प्रेरणा देते हैं। वरदाईचन्द की ओजस्वी वाणी ने वीरों को हँसते-हँसते मातृ भूमि पर मर मिटने को सन्नद्ध कर दिया था। है किसी की कलम में इतनी बिजली ? कक्ष में बैठ कर कल्पना की उडान भरना सहज है पर रणांगण में बहती हुई लहू की नदी में खड़े होकर काव्य सृजन करना इन्ही चारणों की परम्परा है। कुछ रुक कर महाराज ने पुनः कहा बुरा मानोगे गुप्तजी पर सत्य तो कहना ही पड़ता है व्यक्ति को महत्व न देने के हिमायती होकर भी आपका साकेत राम की प्रशस्ति से भरा पड़ा है।"

जैसे डूबते गुप्त जी को राम नाम का तिनका मिल गया हो, तपाक से बोले "लेकिन राम तो आदि शक्ति थे महाराज।"

"आप उन्हें ब्रह्म मानते रहें, आज का बुद्धिजीवी तो उन्हें महा मानव ही मानता है। कभी कभी आदमी का चरित्र इतना उच्च हो जाता है कि देवत्व छोटा लगने लगता है।" खैर जाने दीजिये राम की बात। गाँधी तो अभी कल को ही बात है आप तो प्रत्यक्षदर्शी हो—क्या अपनी कृतियों में आपने उनके गीत नहीं गाये ?"

"गाये हैं किन्तु ?"

"नः नः जाने दीजिये सफाई की आवश्यकता नहीं है किन्तु-परन्तु से सत्य पर आवरण तो पड़ सकता है मिट नहीं सकता। फिर हम आपकी आलोचना थोड़ें ही कर रहे है वरण प्रशंसा कर रहे हैं कि आपने पूज्य बापू और मर्यादा पुरुषोत्तम राम पर लेखनी चलाकर न केवल अपनी तूलिका को पूत किया अपितु संस्कृति और धर्म की रक्षा की है। गाँधी युग पुरुष थे, युग प्रतिनिधि थे, स्वतन्त्रता के सैनानी थें उनके बलिदान को काव्यांजली देकर आपने भारत माता का ही तो पूजन किया है, न नकशे की लकीरें राष्ट्र है न उसका ध्वज या विधान, राष्ट्र है उसमें जीने वाले व्यक्ति और उनका चरित्र। युग प्रवर्तक पर लेखनी चलाये बिना कवि कर्म अपूर्ण रहता है। साहित्य समाज का दर्पण है आदर्श होकर भी यथार्थ है जैसा बिम्ब होगा वैसा ही तो प्रतिबिम्ब आयेगा यदि काव्य दर्पण में ऐसे उभरे हुये व्यक्तित्व भी न दीखें तो उसकी प्रामाणिकता पर लाँच्छन आयेगा।"

जैसे अग्रसेन जी का अन्तस बोल रहा था, जैसे उनके मर्म को किसी ने अजाने ही छू दिया हो। कोमल भावना पर कठिन कुठाराघात होने से निस्तृत यह अमोघवाणी न जाने कहाँ जाकर विश्राम पाती पर सहसा ही कवि जसराज के आगमन ने उन्हें मौन होने पर विवश कर दिया -- जानते थें अपने प्रसंग में चल रहे इस अप्रिय प्रसंग से जसराज के स्वाभिमान को ठेस लगेगी।

"प्रणाम महाराज ? अभिवादन कवि बन्धुओ।"

जसराज अग्रसेन जी के चरण स्पर्ष करे उससे पूर्व ही उन्होंने उसे उठा कर हृदय से लगा लिया।

"जसराज! तुम केवल हमारी एक मात्र स्नेहमयी भगिनी सूर्य कुमारी के एक मात्र पुत्र होने से प्रिय भानजे ही नहीं हो, साहित्य सर्जक होने से, स्वय भू हो, कठिन तपस्याओं के कारण

योगिराज हो।" मुसीबतों में हमारी सहायता करने के कारण मित्र हो।

"योगी तो था जब था राजन। आज तो गृहस्थी हूं, आपका भभूतिया भाट हूं।"

"तुम्हारे योग की हत्या करने के अपराधी भी तो हम ही हैं। अपने हित के लिये हमने तुम्हें क्या से क्या बना डाला। हमारे कारण ही तुम्हें इन कविता कर्मियों की दृष्टि में उपहास और भर्त्सना का पात्र बनना पड़ा।"

महाराज के मुखार्विन्द पर व्यथा साकार हो उठी।

जसराज को अपने आराध्य की उदासी सह्य नहीं थी सगर्व बोला "अपराध कैसा महाराज ! आपने मुझे नया जीवन प्रदान किया है, योग के नीरस क्षेत्र से काव्य के सरस क्षेत्र में अग्रसर किया है, तपस्या और भावना के कल्पित क्षेत्र से कर्तव्य की ठोस भूमि पर उतरा है। आपका गौरव गाने से मेरी गरिमा बढ़ेगी ही।"

सूर्य पर बादल अधिक देर नहीं ठहर सकते वत्स। पाठ्य क्रमों में पढ़ाई जाने वाली तुच्छ पुस्तकों में चाहे तुम्हारा स्थान न हो, चाहे साहित्य के बिके हुये इतिहासकार तुम्हारा विस्मरण कर जायें पर तुम जन-जन के कंठ पर आरूढ़ रहोगे, समृद्धि-शाली अग्रवंश तुम्हारे आगे पीढ़ियों तक नत मस्तष्क रहेगा तुम्हारा उपकार मानेगा।"

चारों कवियों की तरफ इंगित कर महाराज ने जसरास से कहा "हमने कल इन्हें लक्ष्मी पूजा पर आमंत्रित किया था, ये नहीं आये आज हम इनके बिना बुलाये भी दवात पूजा में उपस्थित हैं।" अपना समझ कर इसी का उपालम्भ दे रहे थे।

"माता की गोद में आने के लिये भी किसी को भी बुलाना पड़ता है ? आश्चर्य है ! ये प्रश्न इनके या आपके निमंत्रित

कियो जाने का नहीं है माता के प्रति भावना का है । मैं कल महामाया लक्ष्मी के मन्दिर में भी था आज सरस्वती के देव-धाम में भी । ये दोनो ही तो मानव की दो आँखे हैं ।"

इतना कह कर जसराज ने वीणा वादिनी को साष्टाँग दण्डवत् की । वे उठ कर महाराज को चलने का संकेत करें इससे पूर्व हीं चारों कवि आकर जसराज से प्रेम पूर्वक गले मिलने लगे पाँच कवियों के दस नेत्रों से जो गंगा यमुना वही उसमें न केवल उनके मन की मलीनता बह गई वरण सरस्वती का प्राँगण और भी पवित्र हो गया. प्रायश्चित की सम्पूर्ण भाषा कुछ अबोले आँसू बोल गये—एक अश्रु बिन्दु की थाह पाने के लिये अनेक हृदय सिन्धु भी कम पड़ते हैं ।

विभेद की प्राचीर टूटी,आत्मा से आत्मा का मिलने हुआ इस भरत मिलाप को जो भी देखता है गद्‌गद् हो जाता था उत्तरीय से तरल पलकें पौंछते हुये अग्रोहा नरेश बिस्मित थें कि पुत्रों के नेत्रों में आँसू देख कर भी माँ की मुद्रा आज विशेष मुद्रित क्यों हैं ? उसका आर्शीवाद आज अधिक प्रभावक कैसे लग रहा है ?

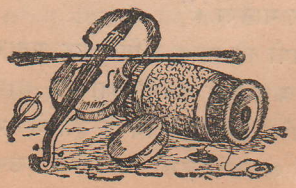

ताबूत की कील

हवाई अड्डे की तरफ लोग हवा की तरह उड़े जा रहे थे, जैसे सबके पंख निकल आये हों। सबके चेहरे प्रसन्नता से गुलाब की तरह खिल रहे थे, मन में अति उत्साह था, हाथों में पुष्पों के हार । गुलाम भारत के मुख पर यह रौनक, यह बहार ? अजीब बात थी ।

आखिर हवाई जहाज उतरा, रुका, यान का द्वार खुला, सीढियाँ लगीं । लोगों की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी । क्षण-क्षण वर्ष-वर्ष हो रहा था । आखिर बहुप्रतीक्षित, बहुपरिचित, बहुचर्चित, बहुप्रिय चेहरा दिखा । वही बंद कालर का साधारण कोट वही टोपी, "पंजाब केसरी जिंदाबाद ! लाला लाजपतराय जिंदाबाद ! स्वतन्त्रता के सेनानी जिंदाबाद !" गगन भेदी नारों से दिग् दिगन्त गूँज उठे । मालाओं से गर्दन नहीं आगन्तुक का सर तक ढक गया ।

पंजाब के उपनिवेशी करण अधिनियम का विरोध करने को अपराध मानकर ब्रिटिश सरकार ने १९०७ में सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय को देश से निर्वासित कर दिया था आज १३ वर्ष पश्चात् १९२० में अमेरिका प्रवास से लौटे हुये अपने प्रिय नेता के दर्शन कर जन-जन का मन प्रफुल्लित हो उठा था जैसे राम बनवास से अयोध्या लोटे हों । अजीब मिलन है सृष्टा का एक का सुख दूसरे का दुख बन जाता

है, भारतीयों के नयनों का तारा अंग्रेजों की आँख का काँटा था ।

लाल, बाल, पाल, के संजीव तिरंगे में 'लाल' रंग सबसे प्रखर था । २८ जनवरी १८६५ को पंजाब के लुधियाना जिले में अग्रवाल वैश्य लाला राधाकिशन के घर पर थाली बजी । जन्म लिया स्वतन्त्रता के सूरज ने, पंडितों ने नाम रखा 'लाजपत' । कालान्तर में उन्होंने अपनी प्रतिभा से अपने नाम को सार्थक कर दिखाया । देश की लाज भी रखी और पत (इज्जत) भी । **इस सूरज की आग उम्र के साथ-साथ धधकती गई जिसमें झुलसी अंग्रेज सरकार । जिससे जली भारतीयों की पराधीनता की बेड़ियाँ ।**

गाँधीजी की अहिंसा तो यज्ञ समाप्ति के छींटें थे पर स्वतन्त्रता यज्ञ में समिधा बने लाला लाजपतराय, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जैसे अगणित परवाने । आजादी मखमल के गलीचों पर चलकर नहीं, फाँसी के फंदो पर झूल कर आती है । लाला जी इस बात को भलीभाँति जानते थे कि इस गोरी चमड़ी के अन्दर कितना कालुस्य भरा है, ये गोरांग महाप्रभु बातों के देव नहीं हैं,इस लिये उन्होंने नपुंसकी नीति नहीं अपनाई, वीरोचित परम्परा के अनुकूल अग्नि पथ अपनाया । उग्रवादी दल और गरम दल के नेता बने ।

१९२० में काँग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व करते हुये उन्होंने कहा "**स्वतन्त्रता भीख नहीं है जो मांगने से मिल जावे इसे बाजुओं की ताकत से लाना होगा**" । कांग्रेस को अपनी लिपलिपी नीति बदलनी होगी । १९२५ में हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन पर भी आपने आग उगली । 'हमें अपने चेहरे सरकारी भवनों की ओर से हटाकर जनता के झोंपड़ों की

तरफ करने होंगें । हिन्दू यदि सामाजिक दृष्टि से अपनी स्थिति सुधार लें तो किसी जाति से उन्हें कोई खतरा नहीं है ।"

जात के बनिये थे । लाला थे । पर सदा ईंट का जवाब सच्चाई के पत्थर से दिया । अमेरिकन लेखिका मिस-मेयो की पुस्तक मदर इंडिया पर तमाचा था, लालाजी की कृति "अनहैपी इंडिया" । अंग्रेजों की पशुतापर लाठी प्रहार नहीं, लाजपतराय का कलाम प्रहार था "तरुण भारत" । जिसे सहन न कर जालिम सरकार ने जब्त कर लिया । जिस वकील की अकाट्य दलीलों से गोरी सरकार के न्यायालय काँपते थे, जिसके विचारों की पताका इंगलैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस तक फहराती थी । लाजपतराय द्वारा सम्पादित "यंग इंडिया" उनकी उदारता और विशाल हृदयता का प्रतीक थी । समन्वय की लय पर उन्होंने सदा ताल दी "आर्य समाज मेरी माता है, दयानन्द मेरे गुरू" कलम और विचारों का ऐसा धनी पृथ्वी के पुण्य से ही उदय हुआ था ।

१९२८ में माँटेग्यु चेम्स फोर्ट के सुधारों का निरीक्षण करने साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई । देश के राजनैतिक दलों ने उसका विरोध करने का निश्चय किया । ३० अक्टूबर को लाहौर में लालाजी के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस "साइमन गो बैक ! साइमन गो बैक !!" के नारे लगाता स्टेशन की तरफ चला । जनता में जोश था—भूचाल किसी के रोके नहीं रुकता पर रोकने की असफल चेष्टा की जुल्मी सरकार ने । लाठियों और गोलियों की ऐसी वर्षा हुई कि मानवता थर्रा उठी ।

सॉन्डर्स नामक गोरे सुपरिन्टेन्डेन्ट ने लाजपत राय पर निर्मम लाठी प्रहार किये । चट्टान टूटी पर झुकी नहीं । तन से अधिक चोट लालाजी के भावुक मन पर लगी यह चोट थी भारत की

पराधीनता जन्य लज्जा की । उन्होंने कहा "यह विदेशी सरकार का अत्याचार नहीं हमारे गुलाम होने का दण्ड है । हमें आज की इस बर्बता का बदला चुकाना है, वह बदला खून खराबी नहीं स्वतन्त्रता प्राप्त करना है ।" उन्होंने सिंह गर्जना में सॉन्डर्स को चुनौती दी "अगर देश में कभी रक्त रंजित क्रान्ति हुई तो उसका दायित्व होगा तुम जैसे दुष्कर्म करने वाले गोरे अफसरों पर । यह हिंसा यह मारपीट वृथा नहीं जायेगी । **मेरे शरीर पर पड़ी एक एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत में एक एक कील होगी ।**"

कितना सत्य था उस महा पुरुष के कथन में, कितनी दिव्य दृष्टि थी उस प्रबुद्ध पुरुष की कि उसका कहा एक एक शब्द आगामी १९ वर्षों में ही सार्थक सिद्ध हो गया ।

लाठियों की मार ने अपना प्रभाव दिखाया । लाला जी उस दिन के बाद चार पाई पर से नहीं उठ सके और १७ नवम्बर १९२८ को वह दीपक सहस्त्रों दीपक जला कर सदा सदा के लिये बुझ गया—अपने रक्त से स्वतन्त्रता का पौधा सींचने वाला राष्ट्र भक्त बिना फल चखे ही स्वर्ग-प्रयाण कर गया ।

धरती रोई ! आसमान रोया !! और रोया अंग्रेजों का भाग्य उनकी सत्ता के ताबूत में बलिदान की एक मजबूत कील जड़ चुकी थी ।

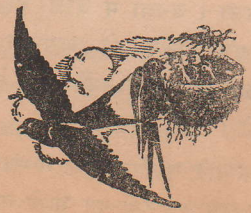

परलोक का भुगतान

दुकान थी या प्रदर्शनी ! जगह २ गद्दी तकियों पर बही खाते खोले मुनीम गुमास्ते रोकड़िये नांवा लेखा करने में व्यस्त थे । अन्न, वस्त्र व अन्य वस्तुओं के गोदाम के गोदाम भरे थे, सोने, चाँदी हीरे, जवाहरातों के अम्बार लगे थे ऐसा प्रतीत होता था मानो 'कुबेर' का कोष और अन्नपूर्ण का भण्डार यहीं आ गया हो । दूकान क्या थी बड़ी भारी हवेली या पूरा बाजार का बाजार था जिसमें प्रथक प्रथक वस्तुओं के प्रथक प्रथक कक्ष बने थे, कोई तोल रहा है, कोई नाप रहा है, कोई मुद्रायें गिन रह है, पचासों सेवक व्यापार कार्य में लगे हुए थे किसी को सिर उठाने का अवकाश नहीं । यह पेढ़ी थी महम के बावन क्रोड़ी सेठ हरभजन शाह की, जिन्होंने अग्रोहा नगर को पुनः वसाने के स्वप्न को साकार करने के लिए ही यह दूकान खोली थी ।

बर्बर आक्रांताओं ने अग्रोहा का तन, मन, धन लेकर उसे उजाड़ दिया था, नगर का स्वस्थ, सुन्दर शरीर खंडहरों के रूप में कंकाल मात्र रह गया था । अपना तन, मन, धन देकर अग्रवाल श्रेष्ठ हरभजन शाह ने अपने पूर्वजों की इस पुण्य भूमि को पुनः विगत गौरव प्रदान करने की ध्रुव प्रतिज्ञा ही नहीं की थी सिर से पगड़ी और मुख से मूंछे उतार दी थीं कि अग्रोहा के उजाड़ रहने तक मुझे इन्हें धारण करने का कोई अधिकार नहीं है ।

विचित्रता यह थी कि इतनी बड़ी दूकान और इतने मनुष्यों की भीड़ में ग्राहक एक भी नहीं था, थे सब लेन-देन करने वाले जो अपनी आवश्यकतानुसार मुद्रायें या वस्तुएँ उधार लेते थे या जमा कराते थे। न मुनाफा न ब्याज,अद्भुत था यह व्यापारी। शुद्ध व्यवसायी हर भजन शाह इस समय शुद्ध समाजसेवी थे, उनका उद्देश्य धनार्जन नहीं उजड़े अग्रोहा को वसाना था।

कलयुग के चरण तो अभिमन्यु पुत्र राजा परीक्षत के साथ ही पृथ्वी पर पड़ चुके थे किन्तु अभी घोर कलयुग नहीं था सतयुग की झलक शेष थी। हम तो साढ़े अठारहसौ वर्ष पुरानी कुशान वंश के शासन काल की बात लिख रहे हैं उसके बहुत काल पश्चात् चीनी यात्री व्हेनशांग भारत भ्रमण करने आया था उसने लिखा है राजा हर्षबर्धन के समय में लोग घरों को बिना ताले लगाये वर्षों तीर्थाटन पर निकल जाते थें लौटने पर धन सम्पति ज्यों की त्यों मिलती थी। ऐसा ही राम राज्य हर भजन शाह के युग में था किन्तु अपवाद कहाँ नहीं होते, लक्खी बनजारा भी एक अपवाद था, जैसे कलयुग का मूर्तरूप। दूर दूर स्थानों से दुर्लभ वस्तुयें लाना और बेचना यही थी उसकी जीविका, घाट घाट का पानी पीया आदमी।

व्यापार के सिलसिले में अग्रोहा मार्ग से गुजरते हुए उजड़े नगर में हलचल पाकर वह चौंका, कौतूहल वश बाजार की ओर बढ़ गया, एक विशाल दूकान पर मनुष्यों का मेला देख कर ठिठका। एक बड़ी सी काष्ठ पट्टिका पर अंकित सुनहरी अक्षर नेत्रों के मार्ग से उसके मन में उतर गये। वे अक्षर थ।

"अग्रोहा में बसने के इच्छुक हर व्यक्ति को आवश्यकतानुसार यहाँ से माल अथवा नकदी जो भी वह चाहे बिना ब्याज बिना मुनाफे के मिल सकता है, **जिसका भुगतान वह इस लोक अथवा परलोक में कर सकेगा।**"

इस लोक अथवा परलोक में भुगतान करने की बड़े अक्षरों में लिखी रेखांकित बात उसकी व्यावसायिक बुद्धि में अंगद के पाँव की तरह जम गई :

बनजारा मुस्कराया 'बिना ढूढ़े हजार मिलते हैं। परोपकारी लोगों को सभ्य शब्दों में भला या भोला कहा जाता है असभ्य शब्दों में भोंदू अथवा मूर्ख, लक्खी ने भी हर भजन शाह को कुछ ऐसा ही समझा। अवसर से लाभ न उठाये वह बेबकूफ। वह तुरन्त उस विभाग की ओर बढ़ गया जिधर परलोक में भुगतान करने के लिए ऋण दिया जाता था। आवश्यक लिखा पढ़ी के पश्चात् जब वह दूकान से उतरा तो उसके पास एक लाख रजत मुद्रायें थी। वह युग कागजी नोटों का नहीं था अतः चलते समय लक्खी के पाँव डगमगा रहे थे मुद्राओं के भारी बोझ और मन की अपार प्रसन्नता के कारण !

प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था, बिना श्रम के लक्ष मुद्रायें मिल जाना किसे कहते हैं मानों अनायास ही भाग्य की लाट्री खुल गई हो। लक्खी की तो खैर धन में विशेष आशक्ति ही थी पर लक्ष्मी किसे नहीं डिगा देती। आज का युग होता तो घन्टे भर में ही लोग सारी दूकान परलोक में भुगतान के नाम लेकर क्रोड़पति सेठ को कौड़ीपति बना देते पर वह ऐसे अंधेर का युग नहीं था औसत आदमी नीयत का खरा और धर्म भीरु था।

बगल में गर्मी थी, मन में उल्लास लक्खी बनजारा बिना पंखों के उड़ा जा रहा था "परलोक किसने देखा है ? कौन लेगा कौन देगा ये सब मूर्खता की बातें हैं अपना यह लोक तो बनाओ।"

"तेरा लोक परलोक दोनों बिगड़ गये बनजारे !"

मन की बात का प्रत्यक्ष उत्तर सुन कर लक्खी सहमा देखा,

कावेरी के तट पर संध्यावंदन करते हुए भूमि से टकरा कर उसने उनका ध्यान भंग कर दिया है करवद्ध हो बोला "क्षमा चाहता हूँ सन्यासी ! ख्यालों में खोया चला आ रहा था अतः अनजान में ठोकर लगी है।"

मुनि मुस्कराए "मुझ पर पदाघात से नहीं अपने स्वयं पर कुठाराघात से तुम्हारा लोक परलोक बिगड़ा है।"

"मैं समझा नहीं आर्य"

माया के मोह में अंधा व्यक्ति न स्वयं को देख पाता है न दूसरे की इतनी घनराशि वह किस तरह उपभोग करेगा, भविष्य की इसी उधेड़ बुन में वह लगा था मुनि की जलद गम्भीर वाणी से झटका खाकर लक्खी कल्पना के घोड़े से गहन गह्वर में गिर पड़ा, पांच मुद्रायें मुनि के चरणों में अर्पित कर खड़ा हो गया।

डसने के लिए जैसे काला नाग आ गया हो वैसे ही मुनि ने तत्काल अपने पाँव खेंच लिए 'इन ठीकरों को दूर कर मेरे पास से, पतित मुझे भी अपने पाप पंक में साझी बनाना चाहता है ?'

धन से इस प्रकार विरक्ति लक्खी जैसे लोभी के लिए नवीन बात थी। हरभजन शाह की भाँति वह मुनि को भी बुद्धि शून्य समझने लगा।

मुनि पुनः मुस्कराए 'बेटा बिना पसीना बहाये धन प्राप्त कर जो तू फूला नहीं समा रहा है वह तुझे रक्त की बूंदों से चुकाना पड़ेगा, आज की हंसी कल रुदन होगी, ऋण तो देने से ही छुटकारा मिलता है।'

अब लक्खी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका, यहाँ तपस्या करते करते इन्हें यह सब कैसे मालूम हुआ ? प्रणिपात कर विस्मय से बोला 'क्षमा हो देव आपको यह सब कैसे विदित हुआ' ?

"साधना से क्या असम्भव है यही तो अन्तर है गृहस्थ और सन्यासी में तुम्हें केवल आज की·····नहीं नहीं मात्र अभी की दीखती है, और सन्यासी को आगे पीछे दूर-दूर की, जन्म जमांतर तक की दीखती है।'

"तब तो आपको यह भी दीख रहा होगा कि मैं परलोक में इस ऋण का भुगतान किस तरह करूँगा ?

अवश्य !

इस वार बनजारा मुस्कराया—मुस्कराया व्यंग से "परलोक, मनुष्य के कर्मों का लेखा जोखा रखने वाले चित्र गुप्त, उस पर न्याय विचार करने वाले धर्मराज, नर्क, स्वर्ग, ये सब मिथ्या है बकवास है आदमी को भीरू बनाने के उत्तरदायी।"

'यदि तुम्हारा कथन ही सत्य मान ले तो भी ये कल्पनायें समाज हित में हैं कम से कम मानव इस भय से ही बुराइयों से वच सकेगा। वैसे सच्चाई तो यह है कि ईश्वर का न्याय इतना खरा है कि कोई व्यक्ति उससे वच नहीं सकता।"

"विश्वास नहीं आता।"

"विश्वास कैसे आयेगा, तुम्हारी आत्मा पर माया का आवरण पड़ा हुआ है।" "क्या वह आवरण हटाकर आप मुझे सत्य के दर्शन करा सकते हैं ?" "सत्य की आँच को सहना बहुत कठिन है लक्खी, पर ऐसा लगता है इस साध्य वेला में मुझे तुम्हारे ज्ञान चक्षु खोलने ही पड़ेंगे, एक क्षण मेरे नेत्रों में निर्निमेष दृष्टि से देख, फिर आँखें मूंद और सत्य के दर्शन कर।"

बनजारे को यह सब जादू सा लगा, पर मुनि के कथन की सत्यता और भविष्य में वह हरभजन सेठ का कर्ज कैसे चुकायेगा इस जिज्ञासा ने उसे मुनि का आदेश पालने को तत्काल तत्पर कर दिया।

लक्खी पर जैसे सम्मोहन सा हो गया उसके मिलित नेत्रों के सामने चित्र पट की भाँति दृश्य उभरने लगे। उसने देखा वह बूढ़ा बैल बना गाड़ी खींच रहा है, ऊपर कड़ाके की धूप नीचे ऊबड़ खाबड़ जमीन, अपार बोझ और चाबुक की मार भूख प्यास से उसका बुरा हाल है—थके बदन से खून और पसीना बह रहा है—चलते चलते एक अट्टालिका के सामने यह गाड़ी ठहरती है जिस पर नाम पट्टिका लगी हुई हैं" दानवीर सेठ हरभजन शाह की हवेली, 'सेठ जी मखमली गाव तकियों के सहारे आनन्द से बैठे कोई शीतल पेय पी रहें है।

लक्खी का वदन पसीना पसीना हो गया, घवराकर वह चीख पड़ा यह सब झूंठ है। यह सब झूंठ है।"

"यह सब सत्य है बनजारे—तुझे बैल बन कर सेठ का बोझा ढो ढोकर उसके ऋण का भुगतान करना पड़ेगा।"

लक्खी की न केवल दैहिक आँखें खुल गई वरन आत्मिक आँखें भी खुल गई। अज्ञान का आवरण हट गया, मुनि के चरण कमलों में गिर पड़ा, फूट फूट कर रोने लगा।"

बुद्धि जीवी इस वैज्ञानिक युग में भले ही इसे निराधार मान लें पर अपने ज्ञान और आत्मिक शक्ति से किसी को प्रभावित कर देना हृदय परिवर्तन कर देना सामान्य के लिए दुर्लभ हो सकता है विशिष्ठ के लिए असम्भव नहीं। वशीकरण विद्या और क्या होती है, दस्यु बाल्मीक, एक ही उपदेश से सन्त वाल्मीक नहीं हो गये थे क्या ?

मुद्राओं की गठरी को पीठ पर लादे बिना एक क्षण की देर किए बनजारा वापिस नगर की ओर रवाना हो गया। आते समय जो उल्लास उसके मुख पर था वह उदासी में वदल चुका था, जिस गठरी को वह आभूषण की तरह शीश पर धारण कर के लाया था वही उसे ऐसी लगी, मानो हरभजन शाह का बोझ

वह बैल बनकर ढो रहा हो, वह मुद्रायें नहीं अपने अरमानों की अर्थी ले जा रहा था।

'मुनीम जी यह रकम वापस जमा कर लीजिये।"

ऐनक ऊँची करके रोकड़िए ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा 'अरे ! अभी दो घड़ी पहिले ही तो तुम उधार ले गए थें ?"

'ले जाने वाला लक्खी मर चुका है।"

'लक्खी मर चुका है ? तब तुम क्या हो उसके प्रेत ? क्या ताड़ी बाढ़ी पीते हो बनजारे ?

'ताड़ी का नशा तो बैरागी ने उतार दिया है, अव कर्ज का भार आप उतार दें तो बड़ी कृपा हो।"

'पर यह असम्भव है भाई इसका भुगतान तो अब परलोक में ही हो सकेगा।"

'अजीव बात है कि ऋणिया ऋण अदा करना चाहता है साहूकार लेना नहीं चाहता—भले आदमी कर्ज तो कभी भी चुकाया जा सकता है—जब देनदार दे रहा हो तो लेनदार को क्या आपत्ति ? लक्खी ने बच्चों की तरह समझाते हुए कहा।

'आपत्ति तो यही है कि तुमने इस लोक में चुकाने के लिए लिया ही नहीं वरना तुम जब भी देते जमा कर लिया जाता। वह बही ही अलग है लक्खो, जिस बही में उधार नाम ही नहीं मंडा भला उसमें जमा कैसे कर लूँ।"

'सीधी बात को अनावश्यक उलझाये जा रहे हो, मैं सेठजी से खुद ही बात कर लेता हूँ' उठते हुए बनजारा बोला।'

'गजब के झक्खी हो लक्खी तुम भी, जब हजार वार कह दिया नहीं जमा होगा ! नहीं जमा होगा !! नहीं जमा होगा !!! फिर भी भेजा चाटे जा रहें हो, तुम्हारी मोटी बुद्धि में यह महाजनी नहीं आयेगी समझे इस गठरी को उठाओ और

चलते बनो ऐसी छोटी-छोटी व्यर्थ की बातो के लिए सेठजी के पास समय नहीं है ।

विवश बनजारा पुनः सरिता तट पर आया बोला, 'मुनि महाराज अब आप ही इस दास को ऋण से मुक्ति दिलाइए' सेठजी किसी भी भाँति इसे लेने को तैयार नही है ।'

'मैं यह जानता था ! धन के प्रति निराशक्ति का तू एक पाठ और पढ़े इसीलिए मैंने तुझे जाने दिया था ।'

'तो अब क्या करूँ भगवन, कैसे उऋण होऊँ ।'

'इस विपुल धन राशि से इसी अग्र नगरी में एक विशाल तालाब बनवादे, पहरा चौकी बैठा दे कोई उसका जल पीने नहीं पाये ।'

'तालाब खुदवादे और कोई पानी पीने नहीं पाये ?'

'हां जब कोई त्रषित जल लेने आए तो कहना कि यह जलाशय सेठ हरभजन शाह का है उनकी आज्ञा है कि न कोई यहाँ पानी पीये न भरे ।'

'इसके कर्ज कैसे चुकेगा ?'

'परिणाम की प्रतीक्षा करो ।'

अल्पभाषी ज्ञानी मुनि से बहस करना उसने उचित नहीं समझा, मुनि के बताये मार्ग पर चलने के अतिरिक्त कोई चारा भी नहीं था, बनजारा, उस चमत्कार दर्शन के पश्चात सन्यासी का अन्ध भक्त हो गया था ।

राजा रिसालू के खेडे के पास सुन्दर जलाशय बना । रिसालू का खेडा वह स्थान इसलिये कहलाता था कि उजड़े अग्रोहा को पुनः बसाने के लिये अपने मित्र, तत्कालीन राजा रिसालु से हरभजनशाह ने, व्यवस्था में सहयोग देने के लिए सैनिक सहायता ली थी, रिसालू के फौजी तम्बूओं के चिन्ह आज भी वहां वर्तमान हैं ।

घाट, सीढ़ियाँ, छतरियाँ दूधिया जल में मुस्कराते आरक्त कमल पुष्प सरोबर की छटा अद्वितीय थी । निर्जीव धातु का यह सजीव रूप लक्खी बनजारे को मुद्राओं से भी मोहक लगा । धन अशांति का जनक है, कैसे व्यय करें ? कहां सुरक्षित रखें ? सौ चिन्तायें इसके विपरीत प्रकृति और मानव की देन उस जलाशय से शांति ही शांति थी, लक्खी को आत्मिक शांति मिली ।

पानी हो तो कितने पीने वाले नहीं ! छीर कपोत तो क्रीड़ा करते, जल पीते, पर लोग आते और प्यासे लौट जाते, घुमक्कड़ बनजारा स्थिर पहरुआ बन गया था देखें कोई पानी पी तो ले, दिन भर में सौ पचास त्रषितों को यह कह कर निराश लौटाता कि सेठ हरभजन शाह ने पानी पर प्रतिबन्ध लगा रखा है ।

निंदा अपोलो की गति से भी तीव्रगामी होती है । होते-होते चर्चा सेठजी के कानों तक पहुँची, तो वे सुनी अनसुनी कर गये—होगा कुछ !

प्रभात बेला में सेठ हरभजन शाह महामाया के मन्दिर की तरफ दर्शनार्थ जा रहे थे, सामने से रीते कलश लिए पनिहारिने तालाब की ओर से लौट रही थी एक ने हाथ मटका कर कहा 'राम राम कैसा जमाना आया है पानी भरने की ही मनाही अच्छे करोड़पति हुये'

दूसरी बोली 'कलजुग और किसे कहते हैं बहना नाम के नगर सेठ है नाम के'

तीसरी बोली 'न जाने इसमें क्या राज है वरना सेठ हरभजन शाह तो ऐसे आदमी नहीं हैं उन्होंने नगरवासियों के सुख के लिए क्या नहीं किया ? उजड़े अग्रोहा को ही नहीं बसाया, हम जैसे कई गरीबों की गृहस्थी बसाई, छोड़ी हुई बाप दादों की धरती के वापस दर्शन कराये ।'

'बात तो तेरी सोलह आने सच हैं रामप्यारी। सेठजी की कृपा से ही तो आज हम पर राम राजी है पर इस तालाब के पानी पर रोक लगा कर सेठजी ने अपने सारे किये कराये पर पानी फेर लिया।'

निंदा का पानी सर से ऊपर गुजर चुका था, कर्णरंध्रों से गर्म शीशा जब हरभजन शाह के अन्तर में पहुंचा तो बड़ी जलन हुई। मां लक्ष्मी की चतुर्भुज मूर्ति के सम्मुख नतमस्तक हो बोले "भगवति यह क्या लीला है, मुझे प्रकाश दो मां ?" प्रतिमा के कंठहार से एक पुष्प गिर पड़ा देवी का आशीर्वाद समझ कर सेठजी ने उसे ग्रहण किया, नेत्रों से लगाकर पगड़ी में रख लिया, हवेली लौटने के स्थान पर वे सीधे सरोवर की तरफ बढ़ गये।

प्रवेश द्वार पर देखा एक श्याम पट पर सूचना लिखी थी 'इस जलाशय के स्वामि नगर सेठ हरभजन शाह है उनका हुकुम है कि कोई शख्स यहाँ पानी न भरे, आज्ञा का उल्लघन करने वाले को दण्ड का भागीदार होना पड़ेगा।'

सेठजी की दूकान पर, 'परलोक में भुगतान' पर कर्ज लेने की सूचना एक दिन लक्खी बनजारे के हृदय में घर कर गई थी, आज तालाब पर लगी लक्खी बनजारे की सूचना सेठजी के हृदय में अंकित हो गई, क्षोम से वे आगे बढ़े।

ऊषा के आकाश तले तालाब का लहरें लेता हुआ मनोहर दृश्य देखकर सेठजी का हृदय प्रफुल्लित हो गया उन्हें ऐसा लगा जैसे उनके अधूरे काम को किसी ने बड़ी कुशलता से पूरा कर दिया है—इस तालाब से अग्रोहा की शोभा में चार चाँद लग गये थे अपूर्णता पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी हाट, बाट, सदन वाटिकायें, देवालय सभी बन चुके थे एक यही अभाव था सो बनजारे ने पूरा कर दिया।

हरभजन शाह ने जूते पगड़ी उतारे, स्फटिक की श्वेत

सीढ़ियां उतर कर वे चुल्लू में जल भरकर पीना ही चाहते थे कि कठोर ध्वनि सुन पड़ी।

'कौन है जो जल पीने की अनाधिकार चेष्टा कर रहा है ? पता नहीं है यह हरभजन शाह का तालाब है उनकी आज्ञा है कि कोई पानी न पीये।

चुल्लु से पानी गिर पड़ा, वे बोले 'पानी प्रकृति प्रदत्त है बनजारे ईश्वर के दान पर रोक लगाने वाला हरभजन कौन होता है ?

'हरभजन कौन होता है' यह हरभजन से जाकर पूछो मैं तो मात्र चौकीदार हूँ उनकी आज्ञा बिना किसी को पानी पीने दे नहीं सकता।'

'त्रषित को पानी न मिले, इससे बड़ा पाप और क्या होगा, यह तो सरासर अन्याय है, अधर्म है, अनुचित है।

'उचित अनुचित का उत्तर सेठजी ही देंगे। मुझसे मगजमारी न करो। यही उत्तर ऋण जमा कराते समय मुनीमजी ने बनजारे को दिया था अब बनजारे ने सेठ को।

हरभजन तो मैं स्वयँ ही हूँ बनजारे मुझे उत्तर नहीं मालूम इसी से तो तुमसे पूछने आना पड़ा—जल न पीने देने की दृष्टता मैंने नहीं तुमने की है, न मेरा जलाशय न मेरी आज्ञा, सब कुछ कोतुक तुम्हारा ही रचा हुआ है, तुम्हीं उत्तर दो'

पूरे भारत में जिसके नाम का डंका पुजता था वह सेठों का सेठ हरभजन शाह स्वयं उसके सामने खड़ा है यह उसने सोचा भी नहीं था। श्रेष्ठि के उत्तम परिधान और प्रभावित व्यक्तित्व से वह यह तो जान गया था कि कोई बड़ा आदमी है पर यह शाहजी ही होंगे अपरिचित यह कैसे समझे ?

एक क्षण को तो वह झिझका पर मानव के स्वभाव से परिचित बनजारे को यह समझते विलम्ब नहीं लगा कि चोट मर्म स्थल पर हुई है, निंदा का बोझ कर्ज से भी भारी होता है

यह उसे आज ही पता पड़ा। अब वह समझा कि मेधावी मुनि ने उसे ऐसा करने को क्यों कहा था, अपनी निंदा न सुन सकने की मानव स्वभाव की कमजोरी से वह पूरा लाभ उठा लेना चाहता था अतः झुका नहीं बेरूखी अपनाये रहा 'कौन कहता है कि जलाशय आपका नहीं है ? जिसका धन लगे वही उसका स्वामि।"

'मैं तुम्हारी बात समझा नहीं बनजारे आखिर तुम कहना क्या चाहते हो व्यर्थ क्यों मेरी बदनामी करने पर तुले हो ?'

'बनजारे ने शनैः शनैः सारी बात श्रेष्ठ को कह दी बोला 'तब मुझे ऋण अदा करने आपके द्वार पर आना पड़ा था पर निराश लौटना पड़ा आज आपको मेरे द्वार पर आना पड़ा समय की बलिहारी है।'

शाहजी बनजारे का व्यंग नही समझ पा रहे हों ऐसी बात नहीं थी पर वे सीधे काम की बात करने में विश्वास रखते थे बोले 'मुनीमजी का इसमें तनिक भी दोष नहीं है लक्खी, जिस बही में कर्ज लिया ही नहीं गया उसमें वे जमा कैसे कर सकते थे, ये बनिये की बही है, कूंजड़े का गल्ला नहीं।'

'तो यह भी कोई धर्मादे की प्याऊ या सकील नहीं हैं। सेठ हरभजन शाह का निजि तालाब है किसी को पानी पीने दें न पीने दें, उनकी अपनी मर्जी।'

'यह तो सरासर मेरे नाम का दुरुपयोग है, भयंकर अपराध है।'

'कर्जदार के कर्ज चुकाने पर भी उसे न लेना, उऋण न होने देना इससे भी बड़ा अपराध है।'

'अब तुम चाहते क्या हो'

'मेरा कर्ज जमा कर लें, और कुछ नहीं'

'पर परलोक की बही में तो केवल नाम ही मंडता है जमा होता ही नहीं उसका भुगतान तो ऊपर ही होगा।'

इस लोक की बही में कर लीजिए, कागजी कार्यवाही में क्या रखा है' दोनों अपनी-अपनी जगह सही थे पर पेंतरे बाजी में सेठजी फिसल रहे थे। वे समझ गये कि लक्खी मानने वाला नहीं है—बोले लक्खी तुम्हारा कथन ही ठीक है, नियम आदमी के लिए होते हैं, आदमी नियम के लिए नहीं चलो हमारे साथ।

पहले आपको जल पिलाऊँगा

अब कोई किसी को नहीं पिलाबेगा, यह जलाशय अब जनता जनार्दन का है, कोई रोक टोक नहीं, आओ सर्व साधारण की भाँति हम लोग साथ साथ ही इसे पीयें।

सेठजी और बनजारे ने एक तालाब में, एक घाट पर, एक साथ आचमन, एक सरोवर के दो दो उद्घाटन कर्ता, चलते चलते लक्खी ने प्रतिबन्ध वाली सूचना पट्टिका को लात मारकर गिरा दिया।

दोनों दूकान पर पहुँचे, सेठजी ने अपने हाथ से परलोक की बही में लिखा उधार इस लोक की बही में जमा किया, नीचे नोट लिखा "कभी २ मनुष्य नियमों से ऊपर उड जाता है, विशेष परिस्थितियों वश जमा किया गया" बनजारे को भर पाई की रसीद दे दी गई। लक्खी ने चैन की स्वाँस ली मानो सीने पर से हिमालय उतर गया है।

रसीद के उस कागजी टुकड़े को वह इस प्रकार लिए जा रहा था जैसे स्वर्ग का पासपोर्ट हो—लुटे हारे सेठजी उसे जाते एक टक देखते रहे।

काबेरी के तट पर लक्खी ने मुनि को बहुत ढूँढा पर रमते जोगी और बहते पानी का क्या पता, उसने उस स्थान की चुकटी भर धूल उठाकर मस्तक से लगाई। लौटते समय देखा तालाब पर पानी पीने व भरने वालों का जमघट लगा है लोगों के हर्ष का पारावार नहीं है लक्खी को बड़ा सुख मिला।

हर व्यक्ति बनजारे को नहीं पहचानता था पर सब यही कह रहे थे यह तालाब लक्खी बनजारे का है भगवान उसका भला करे।

सेठजी की बही में कर्ज का जमा खर्च बराबर हो जाने पर भी तालाब का नाम हर भजन शाह तालाब नहीं लक्खी ताल पड़ा—बनजारे ने वह रसीद तालाब के पानी में डुबो दी जब यह लक्खी तालाब है तो कर्ज कैसे चुका ? भुगतान करके भी उऋण नहीं हो सका, बनजारा समझ गया कि सेठजी की बहीं से जनता की जबान बड़ी है उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता—एक हर भजन को विवश किया जा सकता है सारी जनता को नहीं पर उसे संतोष था कि परलोक के उस भुगतान से तो मुक्ति मिली, फिर जनता की सेवा का यह पुण्य कर्ज के पाप से कम नहीं था।

कोसों फैले हुये लक्खी ताल की टूटी फूटी पार बहाँ जाते ही अब भी देख पड़ती है न जाने कितने प्यासों की प्यास बुझाते २ आज वह स्वयं ही प्यासा हो गया। काल के गाल में समाये उस शुष्क ताल की उर्वरा धरती में अब हल चलते हैं, अब वह तृषितों की तृषा तो नहीं क्षुधितों की क्षुधा मिटाता है जन सेवा का वह क्रम ज्यों का त्यों चालू है—किसान ग्राहकों से कहते हैं यह ऐसा वैसा धान नहीं है लक्खी ताल का है लक्खी ताल का। अन्न के साथ २ उसमें लक्खी बनजारे और सेठ हर भजन शाह का यश उगता है।

संघर्ष हार गये

माँ ने अपने लाडले लाल को एक धेले में बेचा ! और बेचा भी किसे ? एक भंगिन को। फिर सोना देकर वापिस खरीदा उस लोह पुरुष को। यह सौभाग्यशालिनी माँ थी चन्दादेवी ! जिसकी रत्नगर्भा कोख ने २३ मार्च १९१० को तमसा नदी के तट पर बसे अकबरपुरा में एक सपूत को जन्म दिया और अन्धविश्वासों के कारण पुत्र के चिरायु होने की कामना से यह टोना टोटका किया। और कितना सच्चा हुआ मां का टोटका कि चाहे उसका नश्वर शरीर अमर न रह सका हो पर उसका नाम अवश्य चिरायु हो गया।

अकबरपुरा अयोध्या नगरी के समीप ही है। पिता हीरालाल जी के घर में राम आया। नाम रखा गया 'राममनोहर'। लोहिया इसलिये कहलाये कि इनके यहां पीढियों से लोहे का व्यापार होता रहा था। पर इस अग्रवाल वैश्य कुल में लोहिया शब्द को लोहपुरुष बन कर द्विगुणित सार्थक किया सिर्फ इसी तेजस्वी बालक ने।

कहा जाता है तेज गुणों वाला बच्चा माता पिता के लिए भारी होता है। तेज लक्षणों वाला क्या वह तो साक्षात सूर्य था, ज्योतिपुंज था। जैसे भी हो पर शिशु पर प्राण छिड़कने वाली स्नेहमयी माता कुल ढाई वर्ष में ही ममता मोह के सारे बन्धन तोड़ कर स्वर्गवासनी हो गई।

पत्नी के प्यार से वंचित हो विधुर हीरालाल जी ने माता की सेवा का वृत लिया। वह माता जन्मदात्री माता नहीं धरती माता थी, भारत माता। बालक राममनोहर पर पिता की इस राष्ट्रभक्ति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

मातृहीन बालक नटखट होता गया। पाँचवी कक्षा में आते आते तो उसने अलगोजे (राजस्थान में बजाया जाने वाला एक ग्रामीण वाद्य यन्त्र–एक प्रकार से दो लघु बांसुरी) बजाना सीख लिया जो आज तक उसे पालने वाली ममतालु नाईन सरयुदेवी के पास अनमोल पूँजी की तरह सुरक्षित रखे हैं।

नेतृत्व शक्ति राममनोहर में कूट कूट कर भरी थी। अत्याचार मूक रह कर सहले तो उसे राम कौन कहे? अवसर पड़ने पर अकेले पर्वत से टकरा जाना इनकी आदत में शुमार था। जब ये बच्चे ही थे और स्कूल जा रहे थे तो देखा कि एक सबल व्यक्ति एक निर्बल बालक को बुरी तरह पीट रहा है। इस बेमेल लड़ाई को देखकर उनका खून खौल उठा, बस्ता फेंक कर डुक्के ही डुक्के से उस विशालकाय पुरुष को बिना परिणाम की चिंता किये पीटने लगे। इस दुस्साहस का यह तात्पर्य नहीं है कि वे ऊधमधाड़ के कारण पढ़ने में कमजोर थे वे, कक्षा में हमेशा सर्व प्रथम आते थे।

अकबरपुरा छूटा १९१८ में जब हीरालाल जी अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने गये तो राममनोहर को भी साथ ले गये, अधिवेशन की समाप्ति पर बम्बई गये और वहीं बस गये।

महानगरी में इस बालक को प्रविष्ठ कराया गया मारवाड़ी विद्यालय में। अपनी शैतानियों से जहाँ इन्होंने विद्यालय को सर पर उठा लिया वहाँ इनके नाम का लोहा भी सब मानते थे। वादविवाद सभाओं के वे हीरो थे—अंग्रेजी भाषा पर

उन जैसा अधिकार विरले ही लोगों का होगा। १ अगस्त १९२० को अचानक देश भक्त लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का अवसान हो गया। सारा देश सुबक उठा। विद्यार्थी राममनोहर ने न केवल विद्यालय की हड़ताल करवा दी वरन अगुआ बन कर तिलक के अन्तिम दर्शनो के लिए चल पड़े। इस प्रकार लोहिया ने १९२५ में मेट्रिक की परीक्षा उतीर्ण की।

इन्टर पढ़ पहुंचे बनारस के काशी विश्व विद्यालय में। विश्व विद्यालय में भी इनके नाम की तूती बोलती थी। उनकी स्मरण शक्ति देखकर प्रोफेसर चकित थे—इतिहास उनका प्रिय विषय था। "राइज आफ क्रिश्चयन पावर" पुस्तक में जब उन्होंने भारतीयों पर लगाया गया यह आरोप पढ़ा कि १४० अंगरेजों को कलकत्ते की एक छोटी सी कोठरी में दम घोंटकर मार डाला गया जिसे इतिहास में कालकोठरी के नाम से पुकारा गया तो इन्होंने शोध करके यह प्रमाणित किया कि उस कोठरी में १४० व्यक्ति गोदाम की बोरियों की तरह ठूँस देने पर भी नहीं समा सकते तथा जिन १४० व्यक्तियों का मरने वालों में नाम लिया जाता है वे कभी इंगलेंड से भारत में आये ही नहीं। ऐसे झूँठे और असम्भव किस्सों को पढ़कर उन्हें न केवल समूची शिक्षा से ही अपितु अंग्रेजों की हर बात से घृणा होने लगी।

कुल १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने पंजाब के प्रतिनिधि के के रूप में कांग्रेस के गोहाटी अधिवेशन में भाग लिया और वहाँ से आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गये और विद्यासागर कालिज को पवित्र किया। १९२८ में साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए इन्होंने कालिज के छात्रों को तैयार किया और अंग्रेज सरकार के विरुद्ध जोरदार प्रदर्शन किया।

बी. ए. तो पास करली पर बुद्धिमान पिता अपने कुशाग्र बुद्धि बालक को आगे की शिक्षा विदेश भेज कर दिलाना चाहते

थे किन्तु धनाभाव से यह सम्भव नहीं था। किन्तु जब कार्य होना होता है तो योग स्वतः बन जाता है इनके प्रवास के लिए 'अग्रवाल जातिकोष' ने खर्च दिया और १९२९ के जुलाई माह में वे इंगलेंड चले गये। पर इंगलेंड उन्हें पसन्द नहीं आया विशेष कारण यह था कि जिस देश ने भारत को गुलाम बना रखा है उसके प्रति उनके मन में निष्ठा न जम सकी। अतः वे यहाँ से बर्लिन चले गए। १९३२ में उन्होंने "नमक और सत्याग्रह" विषय पर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण किया और डाक्टरेट प्राप्त की। इस पर एक शुभचिंतक प्रोफेसर शुमारकर ने उन्हें बुलाकर गोपनीय ढग से यह सलाह दी कि अब तुम्हारा यहां रहना खतरे से खाली नहीं है। तुम्हारी हलचलें यहाँ की सरकार की दृष्टि में आ चुकी हैं। इस प्रकार डाक्टर राम मनोहर डाक्टर की उपाधि से विभूषित होकर स्वदेश लौटे।

सन १९३४ में लोहिया जी "कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी के साप्ताहिक पत्र के सम्पादक बने। और एक वर्ष पश्चात ही लखनऊ में पण्डित नेहरू की अध्यक्षता में हुये कांग्रेस अधिवेशन में एक हीरे ने दूसरे हीरे को पहिचाना। नेहरू जी ने उन्हें पर-राष्ट्र विभाग का मन्त्री पद सौंप दिया। इस कार्य हेतु उन्हें कांग्रेस कमेटी के कार्यालय इलाहाबाद जाना पड़ा और शनैः शनैः पार्टी में कम्युनिस्टों का रंग देख कर उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।

११ मई १९४० को दोस्तपुर में उन्होंने एक सभा में अँग्रेजों के विरुद्ध विष वमन किया और परिणाम स्वरूप ७ जून १९४० को गिरफ्तार कर लिये गये, मुकदमा चला और भारत सुरक्षा अधिनियम की ३८ वीं धारा के अनुसार उन्हें दो वर्ष का कठिन कारावास सुना कर १२ अगस्त को बरेली जेल भेज दिया। पर जाने क्यों ४ दिसम्बर १९४१ को ही उन्हें अचानक रिहा

कर दिया गया। इस कारावास ने जैसे उनकी आत्मा की आँच को झवक दिया। उन्होने देश की पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिये अधिक उत्साह से कार्य आरम्भ कर दिया और ८ अगस्त १९४२ को आपने बाईस महीने के लिये भूमिगत वास (under-ground) ले लिया। इस बीच उनका जीवन क्रान्तिकारी घटनाओं से ओत प्रोत रहा। खानावदोसी, नकाब-पोसी तथा षडयंत्र। न भोजन का समय न नींद का पता ठिकाना। कितने लोगों के मन में मां के लिये इतना दर्द होता है ? पर २० मई १९४४ को बम्बई की पुलिस ने इन्हें फिर धर पकड़ा और जैसे खूंखार शेर को पिंजरे में यत्न पूर्वक बन्द कर दिया जाता है वैसे ही इन्हें भयंकर यातनाओं के लिये भारत भर में कुख्यात कारागृह लाहौर की एक अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया। अंधेरे में अंधेरा और बढ़ा इसी बीच उन्होंने जेल के सींकचों में सुना कि उनके सर से पूज्य पिता का साया भी हमेशा के लिये उठ गया है और उन्हें लगा कि मैं पहली बार इस वृहद संसार की भरी भीड़ में अकेला हूं। मेरा कोई नहीं है पर जिसका पिता हिमालय हो, मां गंगा हो उसे क्या चिंता। वे आंसू पोंछ कर मुस्कायें, **मौत मनोहर से परास्त हो गई।**

११ अप्रेल १९४६ को जेल पर मेला लगा। जन-जन के मन में बसने वाले प्रिय नेता राम मनोहर सहसा मुक्ति किये जाने वाले थे। कोई फूल बरसा रहा था, कोई माला लिये दौड़ा आ रहा था। अगणित कण्ठों की जय-जय कार से इंगलेण्ड में बैठी सरकार का सिंहासन भी गूंज उठा। लोगों ने राममनोहर को कंधो पर उठा लिया। बहुत कम नेताओं को जनता का इतना प्यार पाने का सौभाग्य मिलता हैं।

नडगांव, कोलेम आदि और तीन चार स्थानों पर इस आंधी तूफान को सरकारी टुकड़खोरों ने बन्दी बनाया पर बिजली कहीं बांधे बधी है जो अंग्रेज ही बांध लेते है।

नो वर्ष पश्चात कानपुर में १९४७ की २६-२७-२८ फरवरी को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन हुआ अध्यक्ष थे राम मनोहर लोहिया। इसमें उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। संस्था के नाम से कांग्रेस शब्द निकाल फेंका जैसे फल के सडे हिस्से को काट दिया जाता है। इस प्रकार अब वे शुद्ध सोशलिस्ट पार्टी के शीर्षस्थ नेता थे।

दो वर्ष के कठोर कारावास ने राम मनोहर का स्वास्थ कुछ क्षीण कर दिया। गोआ के संघर्ष ने उनकी कमर झुकाई, नेहरू द्वारा गांधी जी की उपेक्षा भी उन्हें सहय नहीं थी, बूढ़ी कांग्रेस के लोलुप सदस्य आजादी आने से पूर्व पदों के लिये सौदेबाजी करने लगे। इन सब चोटों ने राम मनोहर के देश भक्त भावुक दिल को बड़े आघात पहुंचाये, वह कुछ कर दिखाने के लिये तिलमिलाये पर पूज्य बापू का मुख देखकर विवश हो शांत हो जाते। देश विभाजन पर फैली साम्प्रदायिकता की आग को उन्होने काफी शांत करने की यथाशक्ति चेष्टा की। इधर नेपाल में राणाशाही के अत्याचार से जनता को बचाने के लिये उन्होंने नेपाल कांग्रेस की स्थापना की और फलस्वरूप २५ मई १९४९ को नेपाल सरकार द्वारा बन्दी बना लिये गये। वहां से ३ जुलाई को मुक्त हो किसानों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई और १४ जून को सागर स्टेशन के प्रतीक्षालय में पकड़ लिए गए। कृष्ण ने तो एक मथुरा के बन्दी गृह को ही पवित्र किया था पर इस राम ने न जाने कितने कृष्ण मंदिरों को पावन किया।

लोहिया जी को स्टाक होम (युरोप) में होने वाले अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने जाना था और वे थे जेल में। इस विषय को लेकर देश विदेश के समाचार पत्रों ने बहुत हंगामा मचाया और अनइच्छा से २१ जून को सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया।

अमरीकी पत्रकारों ने उन्हें पटना सम्मेलन में साम्यवाद पर विचार व्यक्त करने का आग्रह किया और डाक्टर राममनोहर ने जो परिभाषा का सूत्र उन्हें बताया उसने सभी को दंग कर दिया वह सूत्र था :—

साम्यवाद = समाजवाद + तानाशाही + रूस + युद्ध — आजादी''

इतने तेज मस्तिष्क वाले व्यक्ति से उनका प्रथमवार सामना पड़ा था।

२ नवम्बर १९५७ को एक बहुत ही तुच्छ कारण पर वे पुनः गिरफ्तार कर लिये गये और अमानुषिक बल प्रयोग द्वारा कुर्सी से बाँधकर बर्बरु डेढ फर्लांङ्ग दूर मजिस्ट्रेट के पास खेंचतान कर ले जाये गये। अन्त में २२ दिसम्बर को रिहा हुये पर सरकार द्वारा स्वतन्त्र विचरण पर पावन्दी लगा दी गई।

१९६२ के तीसरे आम चुनाव में फूलपुर क्षेत्र से आपने जवाहरलाल नेहरू के विरुद्ध चुनाव लड़ा। नेहरू जी की सर्व व्यापकता व अन्य कारणों से उन्हें पराजित तो होना पड़ा पर पानी पिला देने में कसर न रखी। १९६३ में फर्रूखाबाद के लोक सभा चुनाव में नेहरू जी के भरसक विरोध के उपरान्त भी वे ५८ हजार मतों से विजयी हुये।

जो केवल देश के लिये जीया, जिसके दिल में गरीब श्रमिक किसानों के प्रति अगाध सहानुभूति थी, जिसने देश-देश की खाक छान कर तथ्य की खोज की, जो मशीन की तरह उम्र भर पिला, जिसने हिन्दू मुसलमान सबको सम दृष्टि से देखा, जिसने सरकार की नाक में दम कर रखा था, जिसे न अंग्रेज समझ पाये न भारतीय, ऐसा अदभुत व्यक्तित्व वाले विश्व पुरुष के जीवन में अब संध्या ढलने लगी थी। एक महापुरुष की आवश्यकता शायद यमलोक में भी आ पड़ी थी, अतः ३० सितम्बर १९६७ को नई दिल्ली के विलिंग्टन होस्पिटल में उनकी पौरूष

ग्रन्थी की शल्य चिकित्सा की गई। वैसे वह आपरेशन विशेष बड़ा नहीं था फिर सारे देश की उत्तमोत्तम चिकित्सा उनके लिये उपलब्ध थी वे कुछ स्वस्थ भी हुये पर २ अक्टूबर से बराबर चेंतान शून्य हो गये। सारा देश चिंतित हो उठा १० तारीख की रात आराम से कटी, कुछ होश आया और वे बरस पड़े चिकित्सकों की भीड़ पर "यह डाक्टरों, नर्सो, कम्पाउन्डरों की इतनी बड़ी बारात एक मेरे शरीर की सेवा के लिये हैं क्योंकि मुझे नेता मान लिया गया है, पर वे निरीह अनेक गरीब मरीज कौन है उनकी तीमारदारी के लिये ? जाओ। चले जाओ !! उनकी सेवा सुश्रुषा करो तुम सब मिलकर भी मुझे काल गाल से नहीं निकाल सकते।"

और सचमुच ही ११ को दिन भर पर्याप्त स्वस्थ रहते हुये भी रात को एकाएक गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो उठे। घड़ी ने १२ टंकारे लगाये १२ तारीख प्रारंभ हुई नवरात्रि की नवमी का आगमन हुआ और रात के १ बजकर ५ मिनिट पर यह दीपक भभक कर बुझ गया। जो राष्ट्रनायक नेहरू की आँख का तारा बना फिर कांटा, जिसके तेज के सामने बड़ी-बड़ी मशालें फीकी पड़ी, जिसे जीतेजी पूरी तरह समझा नहीं जा सका उसने मरते वक्त कहा था, "लोग मेरी बात सुनेगें, मानेगें, पर मरने के बाद, देश को नये नेताओं की आवश्यकता है पर वे नये नेता राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नहीं होंगे, होंगे गांव के स्तर के"। विरोधियों ने कहा लोहिया जी का मस्तिष्क विकृत हो गया है पर वास्तविकता यह थी कि सचाई की आंच हमारे तथाकथित नेताओं को सहन नहीं हुई।

इस प्रकार ५७ वर्ष तक संघर्षों से जूझते हुये उन्हें परास्त कर यह शेर चिर शाँति की गोद में विश्राम करने चला गया। मां की छाती फट गई। तिरंगा लिपट कर रो उठा।

● ताज से तराजू तक

"उफ ! क्या खुंखार शेर है। टाँग में गोली लगते ही किस भयानक तौर से गरजा है जैसे बरसाती बादल !"

"और कम्बखत उछला कितने जोर से था सरकार ! वह तो वक्त पर इस नाचीज को ओसान आ ही गया और खुदा की मेहरबानी से निशाना अचूक बैठा वरना.....

"वरना आज कुतुबुद्दीन और मीर कासिम दोनों की कब्रें यहीं बनती।"

शहनशाह मुस्कराये ! हम आप से बहुत खुश हैं सिपह सालार साहिब। पर हम यह देखना चाहते है कि आप केवल जँगल के शेर ही मार सकते हैं या शहर के भी ?"

"खादिम हुजूर का मतलब समझा नहीं।"

"साफ साफ ही जानना चाहते हो तो सुनो ! वह है अग्रोहे का शेर, अग्रवाल राजा अभयचन्द।"

"छत्रपति महाराज अभयचन्द ?"

"हाँ मीर कासिम जैसा उसका नाम है वैसे ही उसमें गुण हैं। सचमुच अभय हैं। उस गुस्ताख ने आज तक न तो सरकारी लगान ही दिया और न कभी हमें सलाम बजाने ही आया।"

बात पर सान चढ़ाई मीर कासिम ने "गरीब परवर सुना गया है कि वह खुद को आपके मातहत नहीं मानता बल्कि अपने

को अलग से एक आजाद मुल्क का आजाद राजा ऐलान किये हुये हैं, यह तो खुल्लमखुल्ला बगावत है सरकार।"

"और हम इस बगावत को हमेशा हमेशा के लिये खत्म कर देना चाहते हैं। एक अदने से राजा ने दिल्ली के शाही तख्त को चुनौती दे रखी है मीर कासिम हमें यह गवारा नहीं है। अगर गौर में सुल्तान शाहबुद्दीन ने यह वाकया सुन लिया तो हम क्या जवाब देंगे।"

'आप फिक्र न करें खुदावन्द। सिर्फ आपके हुक्म की देर है, यदि उसका जमी से नामों निशाँ न मिटा दिया तो मेरा नाम मीर कासिम नहीं।"

"हमें तुमसे यही उम्मीद थी मीर कासिम पर बहुत साव-धानी बरतने की जरूरत हैं।"

अट्टहास किया मीर कासिम ने "सोच न करें सरकार बन्दे के सामने बेचारा अभयचन्द क्या चीज है पिद्दी न पिद्दी का शोरवा।"

"दुश्मन को कमजोर समझना भारी भूल होगी कासिम! अजमत खान और महावत खान जैसे बहादुरों को अग्रोहे के बनियों ने ऐसा मारा कि उनकी रूहें आज तक कब्र में कराह रही है। दुन्दे खाँ, बुन्दे खाँ जैसे जंगखोर जांबाज अपनी तमाम फौज को गाजर मूली की तरह कटवा कर अपाहिज होकर जैसे तैसे भाग सके.....

'और बेचारा अब्दुल्ला! हः हः हः हः अब्दुल्ला को अभय-चन्द ने हाथी पर बैठे बैठे वो तलवार का हाथ मारा कि उसकी पगड़ी का कुल्ला आधे फर्लांग पर जाकर गिरा। अगर उसने महाराज के पाँव पकड़ कर प्राणों की भीख न माँगी होती तो अब तक कभी का खुदा के घर पहुंच गया होता।'

'पर वाह रे वीर उसने पनाहगीर को सिर्फ माफ ही नहीं किया अपनी राजधानी का नगर रक्षक भी बना दिया।'

'हाथ में आए दुश्मन को छोड़ देना वीरता नहीं बेवकूफी है सरकार? और खुशी की बात है कि उस परवरदिगार ने रहमदिली के नाम पर ये मूर्खता इन सर फिरों में कूट-कूट कर भरी है।'

'अपने-अपने उसूल है! पर हमें यह भरोसा है कि मौका पड़ने पर तुम ये गलती नहीं करोगे।'

पूरे पाँच मिनिट हंसा मीरकासिम? फिर कुछ संयत होने पर बोला 'इस हिन्दू कौम में इतनी अकड़ है हजूर कि ये दुश्मन के सामने सर झुकाना जानती ही नहीं। मर मिटना तो इनके लिए खिलवाड़ है। इसलिए ऐसा मौका आने का सवाल ही नहीं उठता और यदि खुदानखास्ता आही गया तो मीरकासिम हाथ में आए शिकार को छोड़ दे ऐसा हो नहीं सकता।

'तो तुम शहरी शेर को मार कर या जंगले में बन्द कर अपने को काबिल शिकारी साबित करोगे इसी उम्मीद से हम तुम्हें अपनी ये करामाती तलवार भेंट करते हैं जिसने बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में फतह हासिल की है।

तलवार लेकर घुटनों के बल बैठते हुए मीर कासिम बोला 'कासिम मालिक के कदमों की कसम खाकर यह वायदा करता है कि अभयचन्द को जँग में शिकस्त दिए बिना लौट कर मुंह नहीं दिखाऊंगा।'

'शाबास मीर कासिम शाबास! बादशाह ने पीठ थपथपाई तुम जैसे बहादुर सिपहसालार पर हमें नाज है, मगर एक बार फिर तुम्हें आगाह किए देते हैं कि जहां तक समझाने बुझाने से वह शाही लगान देना मन्जूर करले तो उस सोये साँप को छेड़ने की जरूरत नहीं है, अगर किसी भी तरह नहीं माने तो जंग शुरु करना, समझे?'

'समझ गया सरकार! खूब समझ गया पर आप यह मान कर चलें कि वह बातों से मानने वाला नहीं है।'

'तो तलबार के साथ साथ छल-बल से भीं काम लेना मीर कासिम । अब्दुल्ला खान को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश करना कोई भी शख्स जिन्दगी में अपनी हार को नहीं भूल सकता । अब्दुल्ला केवल मजबूर होकर वहाँ नौकरी कर रहा है थोड़ा लोभ देने पर वह जरूर तुम्हारा साथ देगा, हम उसे अच्छी तरह पहिचानते हैं ।'

'ये आपने बहुत अच्छी बात कही सरकार ? अब्दुला की मदद हमारे लिए बहुत कारगर सिद्ध होगी । महाराज का उस पर भरोसा है,महल, नगर आदि के सब रास्ते भी वह जानता है, कहीं आने जाने से उसे कोई रोक भी नहीं सकता ये बात वक्त पर बहुत काम देगी ।'

'तुम्हारी सूझ बूझ की हम दाद देते हैं मीर कासिम । अभयचन्द से सीधी लड़ाई लड़कर पार पाना बहुत मुश्किल है । 'आप बे फिक्र रहें वन्दा नमाज । आपकी दुआ से मीर काहिम को कई लड़ाइयो का तर्जुबा है । वक्त पर क्या करना है वह वखूबी जानता है । अभयचन्द को अब पता चलेगा कि किसी शिकारी से पाला पड़ा था ।'

'खुदा हाफिज ।'

\+ \+ \+

भारत को सोने की चिड़िया और फूट का घर समझ कर गौर के क्रूर और दुस्साहसी सुलतान शाहबुद्दीन गौरी ने दिल्ली को फतह कर देश का धन और धर्म लूटा । आँधी आई और चली गई । जाते-जाते उसने ११९६ में अपने एक गुलाम कुतु-बुद्दीन ऐबक को दिल्ली संभला दी जैसे दिल्ली उसके बाप की हो । इस गुलाम वंश के गुलाम बादशाह ने दस बर्ष गौरीके प्रति-निधि के रूप में भारत का शासन सूत्र संभाला बाद में स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर शहनशाह बन बैठा ।

दिल्ली वह किल्ली रही है जिस पर सदा से ही सम्पूर्ण भारत

आधरित रहा है । कुछ अपवादों को छोड़कर हर प्रशासक ने दिल्ली को सर झुकाया है और उन अपवादों में एक था अग्रोहा नरेश अभयचन्द ।

अग्रोहे का धन वैभव और अभयचन्द की सीनाजोरी ऐबी ऐवक की आंखों में सुइयें चुभोती रहती थी पर उसका वश नहीं चल पाता था । उसने कई बार कुशल नेतृत्व में सेनायें भेजी पर, हानि, लज्जा और असफलता के सिवाय कुछ हाथ न लगा । इस वार वार की हार ने उसे कुचला नाग बना दिया था और अव वह जालिम सेनापति मीर कासिम में हवा भर रहा था ।

साठ हजार सिपाहियों की विशाल वाहिनी लेकर मीर-कासिम ने दिल्ली से कूंच का डंका बजा दिया ।

उधर देव कृपा से अभयचन्द को आने वाली विपत्ति का पूर्वाभास हो गया था ।

स्वप्न नयन और मस्तिष्क में उठने वाले विचारों के प्रतीक होते हैं । एक दिन अभयचन्द की महारानी को रात में भयानक स्वप्न हुआ उन्होंने देखा कुपित राज्य लक्ष्मी उनसे रूठ कर जा रही है । कहा "पीढ़ियों से शाशन करते करते तुम्हारी जाति में मदान्धता और अकर्मण्यता आ गई है । ये सिंहासन को बपौती और गलेपाड़ी वस्तु समझ कर उसका उचित सम्मान नहीं कर पाते । सामाजिक कुरीतियाँ दहेज आदि इस सीमा तक बढ़ गए हैं कि लोग सन्तानों का सौदा करने लगे हैं । शिक्षा से सम्बन्ध कम होने लगा है कलम में ईमान नहीं, रहा तलवारमें ताकत नहीं रही । वैमनश्य इस सीमा तक बढ़ा है कि हाथ को हाथ खाने लगता है ऐसे अपावन और स्नेह शून्य स्थान पर में कैसे रह सकती हूं ?"

रानी के अनुनय विनय पर कुलदेवीने कुछ नम्र होकर कहा- "मानती हूँ कि तुम व तुम्हारे पति धर्म परायण हैं, सुशासक हैं पर याद रखो जनता का पाप राजा को भी डसता है । मुझे एक

बार इस शिथिल समाज की आँखें खोलनी ही होगी। आचरण में दृढ़ता बातों से नहीं आती उसे ठोकर सिखाती है। मैं जा रही हूं श्रमिकों और किसानों की वस्ती में। ऊंची हवेलियों में, सेठों की तिजोरियों में बन्दी रहते रहते मेरा दम घुटने लगा है। मैं जा रही हूँ गरीबों और ग्रामीणों की झोपड़ी में मुक्त हवा का सुख लेने। **मुझे शृंगार के लिए मोती नहीं श्रमकण चाहिए। आलसी आदमी की स्वामिनी होने के स्थान पर मैं मेहनत कश इन्सान की दासी होना अधिक पसंद करती हूं।**'

और इस तरह रोती बिलखती राजरानी को छोड़ कर राज्य लक्ष्मी चली गई! प्रातः रानी ने अति उदासी के साथ सम्पूर्ण वृतान्त अपने स्वामि को सुनाया। अभयचन्द ने तत्काल राज पुरोहित को बुलाकर स्वप्न विचार करवाया।

पुरोहित जी ने बताया "स्वप्न अमंगल का सूचक हैं। कोई आने वाली अदृश्य विपत्ति का परिचायक है" अतः इसके निराकरण के लिये अग्रोहा के मध्य महामाया का एक विशाल देवालय बनाने का निश्चय हुआ।

देश देशान्तरों से दक्ष शिल्पि बुलाये गये मणि माणिक्य जटित वह देव धाम विश्व कर्मा के संरक्षण में रात दिन निर्मित होने लगा। स्फटिकी उत्कीर्ण स्तम्भों के मध्य कमलासीन भगवति की हंस धवल प्रतिमा प्रसाद गुणों से पूर्ण अत्यन्त प्रभावशाली थी। मन्दिर तक्षण कला का अद्वितीय नमूना था पर—पर एक ऐसी विकट समस्या उत्पन्न हो गई थी जो बुद्धि और समझ से परे की बात थी, मंदिर के गर्भगृह का कलष एक बार नहीं तीन बार बनाया गया पर हर बार खंडित होकर तिरछा हो जाता था। कुशल कलाविद परेशान थे—महाराज चिंतित थे अपशकुन पर अपशकुन। करें तो क्या करे। हिन्दू संस्कृति के अनुसार कलष का खंडित होना भयंकर अमंगल व मां के प्रकोप का प्रतीक था।

राज्य दरबार में शिल्पियों, पुरोहितों, मन्त्रियों व विशिष्ट नागरिकों से इसी बिषय पर चर्चा हो रही थी। धन तेरस अधिक दूर नहीं थी। जिस दिन देवालय का प्राण प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न होना था सभी तैयारियां लगभग पूर्ण थी केवल कलश का कार्य अवशेष था। कोई अन्य उपाय न देख कर राज पुरोहित ने परामर्श दिया कि कलप रक्त वर्ण पाषाण का न बनाकर विशुद्ध स्वर्ण का बने तब खण्डित होने का प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। उपस्थित सभी प्रबुद्ध लोगों ने एक स्वर से उस सुझाव का स्वागत किया। कई मन स्वर्ण कलश निर्माण हेतु राज्य कोष से देने का अर्थ मन्त्री को आदेश दिया गया।

पर होनी को कौन टाले? उस मन्दिर के भाग्य में उद्घाटन होना नहीं लिखा था। धन तेरस नहीं आई, आया मीर कासिम का दूत।

अभयचन्द ने यथाशक्ति राज्य दूत का अपने दरबार में स्वागत किया और पूछा 'तुम्हारे बादशाह का क्या संदेश है?'

दूत ने अभिवादन कर पत्र पढ़ा—

'खल्क खुदा का, राज्य शहनशाह शाहबुद्दीन गौरी का हुकुम गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक का, आपको आगाह किया जाता है कि कई मर्तबा इत्तला किए जाने पर भी आपने आज तक न तो सरकारी लगान ही दिया और न ही शाही तख्त को सलाम बजाया बल्कि ऐसे कारनामे करते रहे हैं जिससे बगावत की बू आती है।'

'बगावत की बू? हः हः हः हः आगे पढ़ो राजदूत और क्या लिखा है उस गुलाम ने।'

'दूत ने पुनः पढ़ना प्रारम्भ किया "हमारी रहम दिली तुम्हें आज तक मुआफी अता फर्माती रही है पर आपने हमेशा उसका नाजायज फायदा उठाया अब ये गुस्ताखी और ज्यादह दिन गवारा नहीं की जा सकती इसलिए आपको हुक्म दिया जाता है

कि पन्द्रह रोज के अन्दर अन्दर इक्कीस लाख स्वर्ण मुद्रायें लगान की लेकर खुद ब खुद दरबार में हमारे रूबरू पेश हों अगर इस पर अमल नही किया गया तो अग्रोहे की ईंट से ईंट बजादी जायेगी ।'

दूत पत्र बन्द कर महाराज को दे इससे पूर्व ही अभयचन्द आवेश से गर्जे—'राजदूत ? अग्रोहे की ईंट से ईंट बजाने वाला आज तक कोई नहीं जन्मा । क्या कुतुबुद्दीन इस बात को भूल गया कि वह पहले कितनी बार हमसे मात खा चुका है ।'

उत्तर दिया सेनापति ने "ये बेगैरत हैं महराज—जरा घाव भरते ही फिर फुफकारने लगते हैं, इन लुटेरों को, बर्बरों को बिना युद्ध और लूट मार के चैन कहाँ ।"

'मेरे बादशाह ने जंग न करने के इरादे से ही तो ये सुलह का पैगाम भेजा है महाराज ! अगर आप चाहें तो ये खून खराबी ये बर्बादी सब कुछ रोके जा सकते हैं, बस सिर्फ लगान जमा करवा दें ।"

'किस बात का लगान ? अग्रोहे के राजाओं ने कभी किसी को लगान नहीं दिया, किसी को सर नहीं झुकाया, तुम्हारे मालिक की तरह हम किसी के गुलाम नहीं हैं ।'

साहस कर दूत ने महाराज को उत्तर दिया 'दिल्ली के तख्त के सामने कोई आजाद नहीं रह सकता, उम्मीद है आप समझौता कर दानाई का सुबूत देंगे ।'

सेनापति की तलवार को म्यान के बाहर आते देर नही लगी 'राजदूत तुम अपनी सीमा के बाहर जा रहे हो । हमारे महाराज को दानाई का पाठ पढ़ाते तुम्हें लज्जा नही आती ?'

हाथ के संकेत से अभयचन्द ने सेनापति को रोका 'सेनापति जी दूत यदि बध्य होता तो हम इसका सर कभी का धड़ से

अलग कर देते और इसके बादशाह के पास इसी की लाश लगान के रूप में भेज देते ।

क्रोध से तिलमिला उठा दूत चीखा 'महाराज'

ईंट का जवाब पत्थर से दिया अभयचन्द ने 'चुप रहो तुम जंगखोर, हम हिंदुओं को नहीं जानते, न हम किसी को पराधीन बनाते हैं न पराधीन बनते हैं आगे होकर किसी से शत्रुता करना किसी की सीमा में घुसना हमें पसन्द नहीं है, लेकिन कोई भी जो हमें बिना कारण छेड़ता है हम उसे कभी नहीं छोड़ते अगर तुम्हारे बादशाह को धन की आवश्यकता है तो वह हमसे उधार माँगता, भीख माँगता—तब हम उस पर उदारता से विचार कर सकते थे ।'

'मेरा बादशाह भिखारी नही है कई यतीम उनके कदमों में पड़े रहते हैं, वह तलवार के जोर से कर वसूल करना जानता है—महाराज मुझे इजाजत दें और फरमायें कि उन्हें जाकर क्या जवाब दूँ ।'

महाराज ने क्रोध से पत्र फाड़कर दूत पर फेंका 'यह है हमारा जवाब । दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाने वाले बगल में तलवार लेकर नहीं आते । अपने बादशाह से कहना कि अगर अपनी खैर चाहे तो इधर मुँह न करे कहीं ऐसा न हो कि अग्रोहे के छोटे से सिंहासन से टकराकर दिल्ली का तख्त हाऊस चूर चूर हो जाय । अब तुम जा सकते हो हमारे सैनिक तुम्हें सुरक्षित अपनी सीमा से बाहर पहुंचा देंगे ।'

इधर दूत ने प्रस्थान किया उधर राज पुरोहित ने गंगाजल छिड़क कर उस स्थान को प्रक्षीलित किया बोला 'महाराज फिर इस पुण्य भूमि पर म्लेच्छों के चरण पड़ने लगे हैं, युद्ध की भूमिका प्रारम्भ हो गई है, राज्यलक्ष्मी का क्रोध रंग लाने लगा है ।'

'पुरोहित जी हम भला इसमें क्या कर सकते ? हमें टूट जाना स्वीकार है पर झुकना नहीं। सम्मान के बिना जीना भी कोई जीना है ?'

समर्थन किया पुरोहित ने 'इस कुल की यही आन है महाराज, हंसते हंसते देश धर्म पर न्यौछावर हो जाने से बढ़ कर कुछ नहीं होता' एक ठन्डी स्वाँस लेकर उसने कहा पर काश ! मंदिर पूर्ण होकर लक्ष्मी जी का अभिषेक हो जाता तो अच्छा रहता।'

'अच्छा तो रहता, पर मनुष्य के चाहने भर से क्या होता है—वह अदृश्य शक्ति जो चाहेगी वही होगा यदि लक्ष्मी जी के पहले त्रिशूलधारिणी दुर्गा का अभिषेक होना है तो होये। युद्ध एक यज्ञ है जिसमें माँ का दूध, कुल!! बधुओं के सिंदूर और बहिनों की राखियों को आहूति देनी होती है।'

महाराज ने सेनापति को आदेश दिया 'युद्ध सम्बन्धी सारी तैयारियाँ अभी से प्रारम्भ कर दी जायें। घोड़, हाथी,अस्त्र,शस्त्र, सैनिक सभी एकत्रित कर लें—वृद्ध, बीमार, ब्राह्मण और स्त्रियों को शीघ्र से शीघ्र सुरक्षित स्थानों में पहुंचाने की व्यवस्था होनी चाहिए, गढ़ में जितना अन्नजल संग्रहित करवा सके करवा दे—सारी खड़ी फसलों को जलवा दें कूए, बावड़ी, बन्द करवा दें जिससे शत्रुओं के हाथ हमारी रसद न लगे।'

'आप निश्चित रहें स्वामी, सारा प्रबन्ध हो जाएगा जब जब भी ऐसे अवसर आए हैं हमारी जनता ने तन मन धन से साथ दिया है, हमारी सेना में मुगलों की तरह भाड़े के टट्टू नहीं होते—देश के सेवक होते हैं—वे पैसे के लिए नही अपनी मां के लिए लड़ते हैं।'

'हमें आपसे यही आशा थी !' सेनापति को प्रोत्साहन देकर महाराज ने नगररक्षक अब्दुलाखान को सम्बोधित किया 'खान

साहब जो सबसे उत्तरदायित्वपूर्ण काम है वह आप पर हैं इस सुन्दर नगर तथा महल की रक्षा का भार आप पर सोंपते हैं ये आपकी परीक्षा का समय है।'

सर झुकाकर उत्तर दिया अब्दुला खान ने 'गुलाम इस इम्तहान में जरूर खरा उतरेगा सरकार ! पठान का बच्चा नमक हराम नहीं होता, आपने जो मुझे प्राण बख्शे हैं उसका ऐहसान चुकाने का आज ही तो वक्त आया है मैं अपनी जान देकर भी फर्ज पूरा करूँगा।'

अब बारी थी राज पुरोहित की, महाराज ने उनसे निवेदन किया 'गुरुदेव रनवास की रक्षा आपको करनी है—देखना है कि एक भी हिंदू महिला यवनों के हाथ न पड़े, यदि जोहर की स्थिति आ ही जाय तो आप अपने हाथों से उनकी चिता में अग्नि दें हम सब का तर्पण करें।'

कण्ठ अवरुद्ध हो गया राज पुरोहित का 'महाराज मैं यह जानता हूँ कि ब्राह्मण का काम केवल दान लेना ही नहीं है यजमान के लिए सर्वस्व वार देना भी है पर यह हृदयविदारक क्रूर कर्म क्या मुझी को करना होगा ? यजमान स्वर्ग सिधारे और मैं तुच्छ प्राणों का बोझ ढोता हुआ श्मशान में राख बटोरता फिरूं ?'

'कर्त्तव्य के सामने भावुकता कोई मूल्य नहीं रखती पुरोहित जी ! हम जानते हैं कि इससे आपके हृदय को बहुत ठेस लगेगी पर हमने बहुत सोचकर यह निर्णय लिया है। युद्ध में वीरों की तरह लड़कर वीरगति पाना आसान है किंतु अपने प्रियजनों की मृत्यु का दुःख संजोये जीना कठिन है पर इस काम को आपके सिवाय अन्य कर नहीं सकता।'

आखिर पुरोहित के अश्रु रुके नहीं दुपट्टे से पोंछता हुआ बोला 'करूंगा महाराज ! यह निर्मम कार्य भी करूंगा। आपकी

आज्ञा से हंसते हंसते इस विष को पीऊंगा। भगवती कल्याण करे।'

गुरु शिष्य दोनों ने महामाया लक्ष्मी और माँ चामुण्डा के दर्शनार्थ प्रस्थान किया।

\+ \+ \+ \+

कई कोस के घेरे में मीर कासिम का पड़ाव पड़ा। दूत से प्रतिकूल उत्तर पा दलनायक को हमला करने का आदेश मिल गया—प्रभात की प्रथम किरण के साथ अग्रोहा और दिल्ली के सैनिक अति उत्साह के साथ भिड़ गये। कासिम की फौज में एक तरफ दस सहस्त्र अरबी घोड़े और घोड़ों पर सीना ताने तातारी जवान, मध्य में हाथियों पर मुगल पठान और पीछे बेशुमार पैदल तुर्क सैना। सैना से घिरा हुआ तोपखाना, रसद, खेमे, रक्काशायें और सेवक, धूल के अम्बार लग गये, शेषनाग का फण डोलने लगा। यह सब तैयारी, एक सचाई पर चलने वाले, स्वाभिमान से जीने वाले को मिटाने के लिए थी—उधर अभयचन्द की सैना संख्या में तो इतनी अधिक नहीं थी पर उसका एक एक सैनिक कुशल योद्धा और देश धर्म पर मर मिटने वाला था। एक ऊँचे कंचन के हौदे पर गजासीन अभयचन्द स्वयं दो दो तलवारें एक साथ चलाकर शत्रु के काल बने हुये थे—चतुरंगिनी सैना के रूप में विभाजित न केवल अठारह गौत्रों के अग्रवंशी लड़ रहे थे अपितु हर कौम का हिंदू अपनी जान की बाजी लगाये हुये था—लाशों से धरती पट गई, कुल सत्रह दिन के युद्ध में कासिम की आधी से अधिक सैना खेत रही, वह भली भांति समझ गया कि अब पराजय के क्षण और अन्तिम घड़ियां निकट है।

आखिर कासिम को ऐवक की सलाह का स्मरण आया वह प्रयत्न करके अर्धरात्रि को अग्रोहा के नगर रक्षक अब्दुला खान से नदी तट पर मिला—उसे उसकी विगत पराजय याद दिलाई, इस्लाम धर्म और दीनों ईमान का रास्ता दिखाया पर अब्दुला

खान टस से मस नहीं हुआ, तब धूर्त मीर कासिम ने तुरुप चाल चली, बोला—खुद शहनशाह ऐवक ने मुझे कहा है कि तुम्हारी मदद से हमारी जीत हो जाने पर वे तुम्हें अग्रोहे की सूबेदारी सौंपा देंगे। अब्दुला इस प्रलोभन से विचलित हो गया—वह अग्रोहे जैसे समृद्धिशाली राज्य को पा जाने का प्रलोभन न छोड़ सका—दोनों में गुप्त मंत्रणा हुई और अश्वारूढ़ अब्दुल्ला ने तत्काल जाकर नगरपनाह के चोर दरवाजे खोल दिये—सुरंग के द्वारा मीर कासिम को महल के अन्दर ले गया और कृतघ्न अब्दुल्ला खान ने सोये हुए अभयचन्द के, तलवार के एक ही झटके में दो टूक कर दिये—शैया रक्त से लाल हो गई—उधर मुगल सैना गुप्त मार्गों से नगर में घुस आई—आग, लूट मार और बलात्कार की पराकाष्ठा हो गई। सबेरा होते होते अग्रोहा नगरी का सूरज सदा सदा के लिए सो गया—विजय श्री ने मुगलों के चरण चूमे।

एक हजार हाथियों पर लूट का माल लेकर जब विजय पताका फहराता मीर कासिम दिल्ली में घुसा तो आगे बढ़कर स्वयं कुतुबुद्दीन ने उसका भव्य स्वागत किया—दरबारे आम में कासिम ने बड़ी शान से अपनी वीरता हाँकी, बोला—'सरकार जिन्हें हम व्यापार करने वाले बनिये समझे बैठे थे वे बड़े पानी दार निकले, मौत से लड़ना आसान है उनसे लड़ना कठिन, पर अब्दुल्ला खान की मदद ने ही काम दिया—'

'कहां है वह कुत्ता जिसने हड्डी के लालच में बेवफाई की। कमीना न मुसलमानों का हुआ न हिंदुओं का, ऐसे दगाबाज को मां बदौलत के रूबरू अभी पेश किया जाय। हम अपने हाथ से उसे जहन्नुम रसीद करेंगे। नगर रक्षक नगर भक्षक हो गया हः हः हः ?'

'वह तो पहले ही जहन्नुम रसीद हो चुका है पनाहे आलम। महल में जाग हो जाने से पास ही पलंग पर सोई हुई महारानी

जग पड़ी और हमारे भागते भागते भी उसने कस कर ऐसी कटार फैंकी कि खान साहेब के कलेजे के आर पार हो गई ।'

'शाबाश । ये हिंदू औरतें भी खूब हैं ।'

'इसीलिए तो इन्हें साथ लेता आया हूँ परवर दिगार कि अब ये महलों की जगह शाही हरम की रौनक बढ़ायेगी—' कासिम का इशारा पाकर सेवकों ने एक डोली का आवरण उलट दिया—दरबार में जैसे चाँद निकल आया। कासिम बोला—'हुजूर यही है अभयचन्द की बेवा, एक मंदिर में अपार सोना मिला और महल में यह वेश कीमती हीरा ।'

हंसी!खिल खिलाकर हंसी!!आगन्तुक महिला बोली,महाराज की बेवा अबतक महाराज के पास पहुँच चुकी होंगी कासिम साव उन्हें बचाने के लिए ही तो मुझे उनके वस्त्र पहनने पड़े ।'

चीखा कुतुबुद्दीन 'जाल साज औरत तो बता तू कौन है, "मैं महारानी जी की दासी हूं—रानो जी महाराज के साथ सती हो सके उन्हें यह अवसर देने के लिए ही मुझे यह छल-कपट करना पड़ा ।"

'अभी बताता हूं छल कपट का मजा' मीर कासिम तलवार खेंच कर दाखांबाई के पास लपका पर गजब किया उस राजपूत बाला ने—चोली में से छुपी हुई कटारी निकाल कर पहले मीर कासिम के कलेजे में भौंकी और यवन लोग उस पर टूटे इससे पूर्व ही कटारी खेंचकर अपने सीने में भौंकली ।

ऐबक ही नहीं सारा दरबार यह अदभुत दृश्य देखता रहा पर चिड़िया हाथ से निकल उड़ चुकी थी अब सिवाय हाथ मलने के और क्या था ।

लम्बी स्वाँस खींचकर गुलाम बादशाह बोला 'इस हिन्दू कौम को समझना बड़ा मुश्किल है' खैर जो हुआ सो हुआ

अग्रोहेकी जीत की खुशी में कुतुबमीनार पर एक मन्जिल और चढ़ादी जाये दरबार खत्म हुआ ।

और खत्म हुआ अग्रवाशियों का राज्य । महाराज के शव के साथ अग्नि रथ पर आरूढ़ चिता में जलते हुए सती माता ने अश्रुपूरित समाज को आश्वासन दिया—यह सत्य है कि तुम्हारी राज्य लक्ष्मी हमेंशा के लिए चली गई है जो कभी नहीं लौटेंगी पर मेरे आर्शीबाद से लक्ष्मी सदा तुम्हारे पास बनी रहेगी अपनी इस पराजय से सबक लो लक्ष्मी का सदूपयोग करो और चरित्रवान बनकर स्नेह से रहो तुम्हारा गौरव अनुपम रहेगा । 'सती मां की जय' से पवन झूम उठा और इस तरह कुल देवी के कोप और सती माता के वरदान से अग्रवंशियों का शासन समाप्त हुआ वे सिंहासन की गद्दी से दूकान की गद्दी पर आ बैठे । तलवार ढाल का स्थान कलम और बही ने ले लिया, ताज के स्थान पर तराजू संभाल ली ।

खंडहर का प्रेत

सूं सूं····साँप की तरह रात सो रही थी ।

अमावश्या का गहन तिमिर काली चादर में टिम टिमाते सितारे जैसे श्मशान में बिखरे अंगारे

चारों तरफ बियाबान, मनुष्य नाम का जीव दूर दूर तक नहीं, परछाईं तक ने साथ देने से इन्कार कर दिया ।

भुतहे खन्डहरों के बीच अकेला खड़ा मैं काँप उठा, एक एक रोम शूल की तरह बदन पर खड़ा हो गया ।

हू " एक गीदड़ कहीं जोर से रो उठा मेरी स्वाँस धौंकनी की तरह बजने लगी

हा. हा. हा. हा. भयंकर अट्ठहास हवा में गूंजा "कौन हो ? कौन हो तुम ?" मैं डरकर चीख उठा ।

मैं ? हः हः हः मैं अग्रोहा हूँ, अग्रोहा, अग्रोहा ? मगर तुम हो कहाँ मुझे तो केवल तुम्हारी आवाज सुनाई दे रही है, तुम दिखाई क्यों नहीं देते ?

मैं मर चुका हूँ

एक लिज लिजी सी काली रेखा सर्र से पावों पर से रेंग गयी एक सिहरन अन्तर को छू गई ।

हे भगवान तो क्या मैं मुर्दे से बातें कर रहा हूँ—मेरी धड़कन लगभग बंद होने लगी—मै मन ही मन अपने से बातें कर रहा था ।

हाँ तुम प्रेतात्मा से बातें कर रहे हो आ हा. हा. हा., न जाने कैसे वह मेरे मन की बात सुन कर बोला उस ठंडी रात में मैं

पसीने से नहा गया कम्पित स्वर में पूछा, "लोग तो कहते हैं जिसकी स्वाभाविक मृत्यु होती है वह प्रेत नहीं होता"

ठीक कहते हैं-मैं मरा नही था मेरी हत्या कर दी गयी थी"

हत्या कर दी गई थी ? क्यों और किसने ?

जानना चाहते हो तो आओ तुम्हें अपना अतीत दिखाऊँ एक भीमकाय साये ने सामने की तरफ एक टूटी हुई परकोटे की दीवार की ओर संकेत किया ।

एक सुन्दर नगर का छाया चित्र उभरा····

स्वर्ण कलषयुक्त लक्ष्मीजी का मन्दिर, दूधिया जल का विशाल ताल' गगन चुम्बी प्रासाद अट्टालिकायें ।

हाट बाट, हाथी घोड़ों के ठाठ केसरिया पगड़ी बाँधे व्यवसाय में रत श्रेष्ठियों की चहल पहल ।

'आज से दो हजार वर्ष पूर्व मैं ऐसा था, मेरे यश वैभव के गीत गाये जाते थे, मेरे नाम का डंका पुजता था ।

फिर क्या हुआ ?

३२६ ई० पूर्व एक प्रलय कारी आँधी आई ।

'आँधी आयी ?

हाँ यूनान से चला झंझावात बस्तियों को उजाड़ता हुआ झेलम तक चला आया ।

हुक·····हुक वृक्ष के कोटर में एक उल्लू जलती हुई आँखों से मुझे घूर रहा था मानों कह रहा हो वर्षों के मेरे एक छत्र शासन में दखल देने वाला तू कौन है ?

दीवार पर दृश्य बदला—तलवारें बजने लगी—मार काट, लहू की नदियाँ-घायलों की चीख पुकार, शवों को नाचते हुए गिद्ध, कौवे, चील और कुत्ते ।

मैंने डर कर आँख भींचली ।

अंगड़ाई लेकर एक शिलालेख खड़ा हो गया बोला, 'यह टोप पर पगड़ी की विजय है'

खंडहर के प्रेत का साया गर्जा, विजय नहीं पराजय, गद्दार सेनापति गोकुल चन्द राजा से अनबन हो जाने के कारण सिकन्दर से जा मिला और मेरी विजय पराजय में बदल गई, मैं खन्ड खन्ड हो गया---उसकी वाणी आद्र हो उठी यह मेरी पहली हत्या थी।'

पहली हत्या ? तो क्या हत्या भी कई बार होती है ?

मेरा ऐसा ही अदभुत इतिहास है, मैं अनेक बार मर कर जीया हूँ, कैसे ?

सन् १२० में मैं कुशान वंश के आधीन हो गया था तब महम के बावन क्रोड सेठ हरभजनशाह ने मेरा उद्धार किया, लोगों को ऋण दे देकर मेरे पास बसाया और तब ? तब मैं एक भारत विख्यात व्यवसायिक, मन्डी के नाम से जाना जाने लगा, मैं पुनः जी उठा।

चलते चलते ही साये ने एक खंडित श्रेष्ठि की धवल प्रतिमा के सम्मुख अपना सर टेक दिया।

मेरे हाथ भी स्वतः ही उप भव्य प्रतिमा को अभिवादन करने को उठ गये कुछ ही आगे बढे थे कि एक झुर्रीदार सफेद केशों वाले कंकाल ने साये को नमस्कार किया।

मेरी घिग्घी बंध गयी एक प्रेत ही क्या कम था जो वह दूसरा आ टपका हः हः हः हः कुछ भयभीत देखकर साया प्रेत हंसा--यह मेरा पुत्र है —प्रेत का पुत्र ?

हाँ इसका नाम राजभवन है—इसकी प्रथम और मेरी दूसरी हत्या ७१२ ई० में हुई।

हत्या ? क्या इनकी भी हत्या की गई थी।

'हाँ वीर मरते नहीं मारे जाते हैं, चक, चक, चक, उल्टी लटकी चमगादड़ों ने नींद में खलल पड़ने पर आक्रोश प्रकट किया, मकड़ी के जाले को हटाते हुए मैंने पूछा, इसकी हत्या किसने की ?

मेरे अन्न से पले हुए कृतघन धर्मसेन और शिवानन्द ने बाम नगर के तोमर राजा समरजीत को हमारी हत्या करने के लिए आह्वान किया, दस वर्ष हमने डटकर सामना किया अन्त में उनसे डरकर सिरसा के रतनसेन गोकुलचन्द, मुहम्मद बन कासिम से मिल गये और हम पिता पुत्रों की निर्मम हत्या कर दी गई।

एक निस्वास खींचकर राजमहल का प्रेत बोला "बापू क्यों इन जीवित मुर्दो को आप हमारी कहानी सुनाया करते हैं ?

उसके सर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए साये ने पुचकारा "शायद इनमें कोई सेठ हरभजनशाह या राजा अभयचन्द निकल आए बेटा" काश ! ऐसा हो पाता। राजमहल उदास होकर चल दिया !

एक छिपकली ने लपककर एक जीव को मुख में दबा लिया मेरा ध्यान उस तरफ देखकर प्रेत मुस्कराया।

क्या देखते हो कवि हर छिपकली छोटे जीवों को निगलती है पर समय ? हः हः हः हः समय सब छिपकिलीयों को निगल जाता है, अपने आप में डूबा हुआ वह भाव विभोर सा बोले गया मैंने ही कब सोचा था कि मुझ जैसे सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गण-तन्त्र की ऐसा दुर्देशा होगी, पर भविष्य के गर्त में क्या छुपा है इसे कौन जाने ?

"हो सकता है कल तुम्हारी मुक्ति हो जाए सुख की भाँति दुख भी स्थिर नही हैं मैंने सहानुभूति से कहा"

वह व्यंग से मुस्कराया – मुक्ति क्या खाक होगी, कहावत है बारह वर्षों में तो घूरे के भी दिन फिर जाते है पर बारह सौ वर्षों में भी मैं उजड़ कर न बस सका।

इस प्रसंग से छुटकारा पाने के लिए मैंने पूछा अभयचन्द कौन था, जिसका जिक्र अभी तुम अपने उद्धारक के रूप में कर रहे थे।

अभयचन्द ? उसने श्रद्धा से मस्तक झुका दिया मेरा अन्तिम स्वाँस जिसने मेरा जीर्णोद्धार कराया वह महापुरुष अग्रोहा का अन्तिम अग्रवाल राजा था।

तो इसका अर्थ हुआ इसके बाद तुम्हारी तीसरी बार हत्या हुई ? तीसरी बार नहीं अनेक बार सन् ११९२ ई० में बर्बर आक्रांता मुहम्मद गौरी के क्रूर सेनापति कुतुबुद्दीन एवक ने मुझे आग और तलवार की भेंट चढ़ाया—मेरी राज्य लक्ष्मी मुझसे रूठ गयी, सदा सदा के लिए रूठ गई।"

प्रेत की सिसिकियाँ साफ सुनाई देने लगीं—कुछ संयत होकर बोला कवि आओ तुम्हें उन समाधियों के दर्शन कराऊँ जिन्होंने गत युद्ध के यज्ञों में अपनी आहूतियाँ दी हैं।

अब हम एक खुले मैदान में थे, स्थान-स्थान पर जहाँ मृत महापुरुषों की समाधियों और सतियों की छतरियाँ बनी हुई थीं—

श्मशान भूमि, प्रेत का साथ, अमावश्या की रात्रि मुझे हर समाधि करवट लेती प्रतीत हुई। जैसे एक-एक मृत आत्मा शनेः-शनेः खड़ी होकर अपना इतिहास कह रही थी—मर्घट के उस सन्नाटे में मुझे चारों ओर कोलाहल सुनाई दिया। एक प्रेतों का मेला सा लगा दिखा। मैंने अपने कान बन्द कर लिये।

चूं चूं चक चक चक, चूं चूं बिलों में चूहे डन्ड पेल रहे थे।

प्रेत बोला ये भग्न समाधियाँ ही अब मेरी निधि थी—गरीब के धन की तरह मैं अपनी इन पुत्रियों को अपने क्रोड में छिपाए बैठा, अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था कि फूटे भाग्य ने फिर करवट ली जोधपुर राज्य के अग्रवाल पुनः यहाँ आकर के रहने लगे किन्तु····

किन्तु क्या ?

किन्तु पड़ौसी पिशाचों ने उन्हें परेशान करना आरम्भ कर दिया तब उनकी रक्षार्थ पटियाला राज्य के दीवान नन्नूमल अग्रवाल ने १७७४ ई० में यहाँ एक किला बनवा दिया।

किले का नाम लेते ही न जाने कहाँ से एक युवा अस्थि पंजर सामने आ खड़ा हुआ।

"बापू यह कौन है ?"

प्रेत उत्तर दे इसके पहले मैंने मन ही मन भय मिश्रित खीज से कहा" मैं तो हूँ सो हूँ पर तू कौन बला है ?"

खण्डहर का प्रेत हंसा—आओ तुम दोनों का परस्पर परिचय करा दूँ।

बेटा ये कवि है !

कवि क्या होते हैं ? पिताजी !

"इच्छा तो हुई कह दूँ जीवित प्रेत।"

पर उत्तर साथी ने दिया—जो सोये समाज को जगा दे जैसे अपने महाराज के भानजे, भाट जसराज थे न ?

हाँ-हाँ जसराज का नाम लेते ही उसने जोश से गाना आरम्भ कर दिया।

"अग्रवाल भूपाल कीर्ति कुल कमल दिवाकर।"

उसका गाना क्या था जैसे आकाश में मेघ गरज रहे थे, चारणी युग की कल्पना साकार हो उठी।

सिने संगीत को अभ्यस्त श्रवनेन्द्रियाँ इस एक पंक्ति से ही उकता गई। उस तानसेन की सन्तान को चुप करने के अभिप्राय से मैंने प्रेत से कहा आपने परिचय इकतरफा कराया—

हाँ इसके गीत ने मुझे अतीत में खो दिया—यह मेरा दूसरा पुत्र है किला—वो तो मैं इसके 'बापू' सम्बोधन से ही समझ गया था पर ये कैसे मरा ?

फिर वही मरा-मरा ! मरा नहीं मार दिया गया।

"सन् १८५७ में गोरांग महाप्रभुओं ने प्रथम स्वतन्त्रता, संग्राम में हमारा सर्वनाश कर डाला तब से हम भूत हैं खण्डहर बने हुए हैं।"

तुम्हारी कहानी बहुत करुण और अद्भुत है हत्याओं का लोक दर्शक सिलसिला कम ही देखने को मिलेगा।

एक कड़ुवाहट के साथ वह बोला मेरा दुस्साहस तो देखो फिर भी मैं जी रहा हूँ—इधर कुछ दिनों से मुझमें फिर प्राणों का संचार होने लगा है अपने आपको कुछ स्वस्थ अनुभव करने लगा हूँ।

१९०८ में स्वामी ब्रह्मानन्द जी के प्रयत्न से श्री विशेश्वर लालजी हलवासिया ट्रस्ट द्वारा मेरे लिए एक पक्का कूआ और प्याऊ बनी, कलकत्ता निवासी सेठ रामजीदास बाजोटिया ने एक मन्दिर, एक धर्मशाला और एक गऊशाला का निर्माण कर मेरा शृंगार किया—सुनता हूँ कि कोई महाविद्यालय भी मेरी सेवार्थ बनने वाला है।

'तो मतलब यह है तुम्हारे दिन फिर रहे हैं—चिकित्सा चल रही है ईश्वर ने चाहा तो तुम शीघ्र ही पूर्ववत हो जाओगे।'

मेरे लाखों सूक्ष्म सपूतों के होते हुए जिस गति से कार्य हो रहा है उससे निराशा ही अधिक होती है—इस मरे-मरे जीवन से तो पूरी तरह मर जाना अच्छा है सदा ये अन्देशा बना रहता है कि सँभलने के पहले फिर कोई झटका न खा जाऊँ।

आशावान ही जी सकते हैं। बन्धु—तुम अवश्य जीओगे, तुम अवश्य जीओगे।'

कौन जीयेगा? चाय लाते हुए श्रीमतीजी मुस्कराकर बोली बच्चों की तरह नींद में किससे बातें कर रहे थे?

चौंक कर मैं उठ बैठा "हे ईश्वर! सपना देख रहा था या सत्य, अजब माया नगरी में जा फँसा!"

क्या देखा था?

एक प्रेत लीला!

प्रेत लीला या प्रेम लीला वे फिर मुस्करा दीं—

"प्रेत लीला, प्रेतलीला, प्रेत लीला।"

"किसका प्रेत था"—

"अग्रोहे का"—

उपेक्षा सी करके वे बोली उठी जो मस्तिष्क में विचार चक्कर काटते रहते हैं वे ही सपने में प्रेत बन जाते हैं। कवियों की कल्पना का भूत और कहा ही क्यों जाता है—

उनकी बात काटने को मैं तर्क की कोई कैंची ढूँढ़ ही रहा था कि अपनी बात का समर्थन करने को उन्होंने अंग्रेजी का एक भारी भरकम सा मुहावरा और फिट कर कर दिया "ऐम्पटी माइन्ड इज डेवलस वर्कशाप"—खाली मस्तिष्क शैतान का कारखाना—

अब उन्हें क्या कहूँ वे ही बोलीं इस वैज्ञानिक युग में भूत प्रेतों की बातें करते हो कोई सुन लेगा तो मजाक उड़ायेगा जल्दी चाय वाय पीकर निवृत हो जाओ आज अश्विन शुक्ला एकम् है महाराज श्री अग्रसेन जी की जयन्ती—

अग्रसेन जयन्ती? मैं जल्दी-जल्दी तैयारी करने लगा—पर जासूसी उपन्यास जैसी एक विचित्र खुमारी रात्रि के सपने की मेरी आँखों में छायी रही घर के बाहर ही महाराज श्री के जुलूस की तैयारियाँ हो रही थी छत्र-चवर युक्त चित्र पर पुष्पहार चढ़े थे। लोग गा रहे थे।

"अग्रोहा राज्य हमारा था।"

"हमको प्राणों से प्यारा था।"

मेरा भी स्वर उनके स्वर मे मिल गया पर प्यारे अग्रोहा का स्मरण कर मेरी पलकें भीग गई।

काश! हम गाने वालों में कोई हरभजन शाह होता!

भारत की प्रथम महिला मन्त्री राधा

"ठहरो।"

जैसे आसमान से बिजली कड़की, झंझा गति से दौड़ते अश्व की वल्गायें खिची, तलवार की मूठ पर हाथ रखा, अश्वारोही ने देखा, झाड़ी की ओट से निकल एक भयंकर आकृति वाला मानव देहधारी जीव मार्ग अवरुद्ध किये चट्टान सदृश्य खड़ा है।

बाबर पुत्र हुमायूँ को परास्त कर दिल्ली पर राज्यासीन होने से शूर शिरोमणी शेरशाह की महत्वाकांक्षा अत्यधिक बढ़ गई थी। राजस्थान के मेरटियों की वीरता और वैभव की प्रशंसा सुन उसने उन पर आक्रमण तो किया किन्तु उसके दुर्भाग्य और मेरटियों के अदम्य साहस के कारण उसे मुँह की खानी पड़ी, और वह अपार धन जन की क्षति करा, प्राण बचा कर भागा। अलवर राज्य की सीमा के पास निर्जन सघन वन में जब उसने सहसा ही किसी पुरुष कंठ से निस्रत कर्कश ध्वनि में 'ठहरो' गर्जना सुनी तो इस अनायास आई विपत्ति से जूझने को विवश होना पड़ा। पूछा "कौन हो तुम ?"

'वन नरेश भानुसिंह'

ओ हो तो तू है दश्यु भानुसिंह ? जिसके बारे में लूट और हत्याओं की अनेक कठोर कथायें मैं सुन चुका हूं।

भानु के अट्टहास से वन प्रान्त गूँज उठा।

"एक डाकू दूसरे को डाकू कहे इससे बड़ी हँसी की बात और क्या होगी। व्यर्थ की बातें सुनने के लिये भानु के पास समय नहीं है, निकाल क्या है तेरे पास।"

"यह है मेरे पास" शेरशाह ने तलवार का एक भरपूर वार भानुसिंह पर किया।

असतर्क होते हुए भी भानु ने शीघ्रता से वार को खड्ग पर झेल लिया। जिसका जीवन ही मार काट में बीता हो उसके लिये यह अति साधारण बात थी। वह पूर्णतया संभल कर प्रतिवार करे इससे पूर्व ही शेरशाह के प्रशिक्षित अश्व ने पीछे की दो टाँग पर खड़े होकर अगले पाँवों से दश्युराज पर भयंकर आघात किया। शत्रु का पलड़ा भारी देख भानु ने मुँह से एक विशेष प्रकार की संकेत ध्वनि की। देखते ही देखते भानु की कुछ कारबन काफियाँ विविध शस्त्र लिये इधर उधर से निकल आई। शुद्ध व्यवसाई सूर इस सम्भावना से अनिभिज्ञ नहीं था वह हिम्मत नहीं हारा अपितु अधिक क्रोध से तलवार चलाने लगा।

किन्तु ?

किन्तु एक सर्प को सैकड़ों चींटियाँ घसीट ले जाती हैं। घास की तरह दश्युओं को काटते हुए भी शेरशाह की परिमेय शक्ति क्षण क्षण क्षीण होने लगी।

घिरे हुए शेर की विवशता का लाभ उठाकर कुख्यात डाकू भानु ने जैसे ही अपना भाला मारना चाहा एक तीक्ष्ण तीर आकर उसकी उठी हुई भुजा में प्रवेश कर गया। प्रहार करने वाला प्रहार खा गया।

ओष्ठ भींचकर भानुसिंह ने तीर निकाल फेंका। बांह से रक्त का फव्वारा फूट निकला भानु ने उसकी चिन्ता किये बगैर आघात करने वाले को देखा "ओह तो तू मच्छर आज फिर सामने आगया है ?"

"तेरे अत्याचार मुझे खींच ही लाते हैं'

"चींटी के पर निकलना उसकी मौत की निशानी होती है, तो आ पहले तुझसे ही निबट लूं, इसे बाद में समझूंगा।

"ले समझ" दूसरे आगन्तुक अश्व सवार का विषाक्त तीर भानु का कण्ठ फोड़कर गर्दन से पार निकल गया। वह शिथिल होकर गिरे इससे पूर्व ही प्रथम आगन्तुक के प्रखर असि प्रहार से भानु का सिर धड़ से पृथक हो गया।

दश्यु नायक की इहलीला समाप्त कर दोनों घुड़सवार उधर लपके जिधर अकेला शेरशाह दश्यु दल से संघर्ष कर रहा था।

दो प्रबल सहयोगियों के आजाने से इधर जहाँ शेरशाह के उत्साह में वृद्धि हुई वहाँ अपने नायक को मृत देख मृत्युदल के हौसले पस्त होगये, वे भाग खड़े हुये।

मैदान साफ देखकर सूर सम्राट ने आश्वस्त हो अपने सहायकों को धन्यवाद देना चाहा "आप दोनों की रण कुशलता देखकर हम दंग हैं। आपने मुझ अनजान की जो मदद की है उसका हम तहे दिल से शुक्रिया अदा करते हैं।

तुर्रे वाली पगड़ी में दमकता हीरा देखकर प्रमुख अश्वारोही ने प्रभावित होते हुए शेरशाह से पूछा "किन्तु आप हैं कौन ?"

"बुरे दिन के हाथ का एक मामूली खिलौना" कथन में उसकी विगत वेदनायें साकार हो उठीं।

'किन्तु आपकी वेशभूषा कह रही है कि.....'

'आप बादशाह हैं' बादशाह ने बीच में ही बात पूरी कर दी।

दूसरे अश्वारोही ने कहा—'जी हाँ, जी हाँ। यह हाथ की जड़ाऊ तलवार, यह सरपेच पर मूल्यवान हीरा.....

'दौनो चीजें बहुत पसन्द आई हैं नौजवान ? यह लो' पगड़ी से हीरा निकालकर एक को हीरा तथा दूसरे को तलवार भेंट करना चाहा।

'नहीं। नही।। हमें यह कुछ नहीं चाहिये, इनका लोभी तो भानु ही था जो इन निर्जीव पदार्थो के कारण एक सजीव इन्सान के प्राण ले लेना चाहता था।'

'शेरशाह के प्राण इतने सस्ते नही हैं मेरे दोस्त।' अजाने ही सूर सम्राट के मुख से वास्तविकता प्रकट हो गई।

आश्चर्य विमूढ़ प्रमुख अश्वारोही ने नतमस्तक हो कहा 'तो आप ही दिल्ली पति शेरशाह है ?

'तुम्हारा शक दूर करने के लिए यह तलवार पर अंकित राज्य मुद्रा और हमारा नाम काफी है' शेरशाह ने अपनी तलवार उसकी ओर बढ़ा दी।

भाव विभोर होते हुये वही अश्वारोही बोला—'तो यही वह अविस्मरणीय तलवार है जिसके द्वारा बाल्यकाल में आपने मेरी शेर से रक्षा की थी।'

अतीत का आभास पा शेरशाह ने गौर से अश्वारोही को देखा—तत्काल प्रसन्न हो उसे गले लगा लिया 'हेमू ! मेरे बचपन का दोस्त हेमू !!"

बाल सखा को पाकर हेमू के नयन सजल हो उठे। 'हां हुजूर आपका सेवक हेमू।'

'भई कमाल कर दिया हेमू, तुम्हारा तलवार चलाना देख कर तो हमें भी ऐसा लगा जैसे तुमसे अभी बहुत कुछ सीखना है। और यह तुम्हारा खूबसूरत साथी ? तीरन्दाजी में जवाब नहीं है इसका। भानु का मुँह किस कुशलता से तीरों से भर दिया था इसने।'

उत्तर दिया हेमचन्द के साथी ने 'हुजूर की जर्रानवाजी है, वर्ना क्या हम नाचीज और क्या हमारी रण कुशलता।

'वाह आवाज में क्या मिठास है भई हेमचन्द कौन है ये ? जिसे अगर औरतों का लिवास पहिना दिया जाय तो न रूपरंग

से और न बोली चाली से ही कोई शिनाख्त कर सके कि यह मर्द हैं, लेकिन बहादुरी ऐसी कि जवां मर्दों के भी कान काट ले।

'हुजूर का मजाक पसन्द आया, ये मेरे मित्र राधेश्याम हैं सरकार। बचपन में संगीत का रियाज किया करते थे इसलिए आवाज में कशिश है।'

हेमू के दिए गए झाँसे को शेरशाह समझ न सका, बोला, 'मा बदौलत तुम्हारे दोस्त के चुनाव की दाद देते हैं, कुछ रुक कर शेरशाह ने हेमू से पूछा 'और हां तुम्हारे दादा जयपालदास जी के क्या हाल चाल हैं ?

'सरकार को अभी दादा जी का स्मरण है ?

'उन जैसे रहमदिल इन्सान भी कहीं भुलाए जा सकते हैं, हर एक की मुसीबत में काम आना ही जैसे उनकी जिन्दगी का मकसद हो। जिन दिनों मैं और मेरी माँ गरदिश के मारे दुश्मनों से लुकते छिपते इधर उधर भटक रहे थे, हमारा कोई मददगार नहीं था तब बिना किसी की परवाह किए जयपालदास जी ने ही हमें पनाह दी थी—पनाह ही नहीं दी अपनी औलाद और मुझमें कभी कोई फर्क नहीं समझा।

'हाँ तुमने दादाजी के बाबत बताया नहीं ?

'क्या बताऊं गरीब नबाज, इस कमीने भानुसिंह ने उस देवता को भी जिन्दा जला डाला।

ऐसे गिरे हुए लोगों के लिए इन्सान की कोई कद्र नहीं होती हेमू, इन्हें दौलत चाहिए बस केवल दौलत। पर तुमने एक सपूत की तरह अपने दादा के खून का बदला ले ही लिया, खुदा उन्हें जन्नत में सुकूं बख्शे।

"बदला लेने के लिये ही तो तीन साल से घर बार छोड़कर जंगल की खाक छानता फिर रहा हूँ,"

"क्यों तुम्हारा घर बार क्या हुआ ? तुम्हारी तो पुश्तैनी बहुत बड़ी हवेली थी,"

"हवेली अब भी है सरकार' पिताजी आज भी वहाँ गल्ले का बहुत बड़ा व्यापार करते हैं पर हुजूर तो जानते ही हैं, मैंने दादाजी की छत्रछाया में बचपन से ही आपके साथ तीर तलवार चलाना, घुड़ सवारी करना सीखा था—भाला पकड़ने वाले हाथ तराजू नहीं पकड सके।

दादाजी की मृत्यु पर वे तो आँसू बहाकर बैठ गये पर मैंने प्रतिज्ञा की कि भानु को मार कर ही दम लूंगा"

"तो वह तो प्रतिज्ञा आज पूरी हो गई, अब घर जाकर अपने वालिद पूरनदास जी के साथ काम करोगे।'

"यह सम्भव नहीं है सरकार। मेरे विचार पिताजी की वाणिक वृत्ति से मेल न खा सकेंगे।"

"तो फिर चलो हमारे साथ, अपनी फौज में हम तुम्हें कोई अच्छा सा ओहदा दे देंगे पर तुम्हारा यह दोस्त.....

"इनकी फिक्र न करें ये भी मेरी तरह अकेले हैं मेरे साथ दिल्ली में ही रहेंगे—"

"वाह ! अकेले कैसे ? क्या तुम दो अकेले मिल कर दो नही हो गयें" तीनों के मुक्त हास्य से विपिन का सूनापन मुखर उठा। चढ़ी रकाब तीनों अश्वारोहियों ने दिल्ली की तरफ कूच किया।

समय उड़ता रहा, इतिहास के पृष्ठ पलटते रहे, और हमारी कथा के नायक हेमू के पाँव सूर सल्तनत में जमते गये।

शेरशाह की हर असफलता उसमें निराशा का संचार नहीं उत्साह का आवेग भरती थी। चैन से बैठकर राज्य को सुदृढ़ करने का उसे अवसर ही नहीं मिला। युद्ध ! युद्ध !! बस केवल युद्ध !!! और ये युद्ध ही एक दिन उसके प्राण ले गये। कालिंजर के युद्ध में प्रधान सैनापति था ईसा खाँ, लेकिन वह अन्दर ही

अन्दर शत्रुओं से मिला हुआ था। वफादार था एक तोपची दरिया खां और दाँया हाथ था हेमू। ईशा खाँ की धोखा धड़ी से शेरशाह तो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ पर दरिया खां और हेमू की सतर्कता से कालिंजर के रण में विजय सूर साम्राज्य की ही रही।

एक सूर अस्त हुआ दूसरा उदित। जलाल खां छोटा सलीम शाह की उपाधि धारण कर दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। यह शेरशाह का छोटा पुत्र था, बड़ा पुत्र आदिल खाँ पिता की मृत्यु के समय रणथम्भोर में था और संकट कालीन स्थिति में सिंहासन को खाली छोड़ना खतरे से खाली नहीं था। फिर आदिल खाँ बिलासी और मद्यप था। अतः सलीम शाह को ताज पहिनाने में ऊपरी तौर पर ईसा खाँ ने अपना स्वर सबसे अधिक बुलन्द किया और बादशाह का विश्वासपात्र बन बैठा।

विश्वास में विष का वास है, ईसा खां ने अनुभव विहीन सलीमशाह के कान भर कर ईर्षाग्नि का शिकार बनाया हेमू को। वह बन्दी बना लिया गया, पर दाद देनी पड़ती है वृद्ध तोपची दरिया खाँ तथा राधेश्याम को, जिनके अथक प्रयत्नों से हेमू न केवल मुक्त कर दिया गया अपितु सलीम शाह के सामने सचाई स्पष्ट हो गई, अब उनके दिल के सिंहासन पर हेमू का स्थान था।

हेमू को राज्य में सब से ऊँचा ओहदा देकर ईसा खां को भरे दरबार में एक समारोह का बहाना बनाकर बन्दी बनाने का प्रयत्न किया गया पर यह देख कर सलीम शाह की आँखें फटी की फटी रह गई कि न केवल ईसा खां के कुछ साथी, पर राज्य के बहुत से दरबारी भी ईसा खाँ की तरफ से लड़ रहे हैं, पर हेमू और राधेश्याम की तलवार ने बागियों को घास की

तरह काट डाला पर मौका पाकर ईसा खां अपने साथियों को आग में झौंक कर भाग निकला।

सलीम शाह ने ईसा खां की गद्दारी के कारण यह आदेश दिया कि 'ईसा खाँ को जिंदा या मुर्दा पकड़ा जाये।' कौन जाय मौत के मुँह में ? पर वाह रे हेमचन्द ! कुछ चुनीदा साथियों और अपने अनन्य मित्र राधेश्याम को लेकर वह दुर्गम वन और पर्वतीय प्रदेश को रौंदता हुआ ईसा खाँ का पीछा करता रहा। वन में एक नर भक्षी सिंह का जोड़ा था—लोग तो क्या असाधारण पशु तक भी उसके आतंक के मारे दिन में भी उधर से नहीं गुजरते थे। ईसा खाँ इसीलिए इधर से भागा था कि शेर से तो बचा जा सकता है पर हेमू से बचना दुस्वार है पर समय किसी को नहीं बख्शता, मौत हर जगह पहुँच जाती है।

हिंसक पशु की गंध पाकर हेमू का अश्व ठिठका, वह कारण समझने की चेष्टा करें इससे पूर्व ही झाड़ी में से छलाँग लगा-कर शेर ने घातक आक्रमण किया सैनिक चीख कर भागे, पर अकेला हेमू तलवार लेकर सिंह से जूझ गया। जनराज वनराज के प्राण ले, इससे पूर्व ही अपने सहचर को संकट में पाकर विकराल सिंहनी आ धमकी यद्यपि राधेश्याम के तीर उसके लिये प्राण घातक सिद्ध हुये फिर भी हेमू शेरनी के पंजे से गहरे घाव खा गया। बेहोश हेमू को राधेश्याम अपने अश्व पर उठा कर उड़ चला। वनवीथी में एक सन्यासी अपनी पर्ण कुटी में बैठे स्वा-ध्याय कर रहे थे। इनके आगमन पर स्वागत करते हुये सआश्चर्य प्रश्न किया, क्या सिंह सिंहनीं ने आपका मार्ग अवरुद्ध नहीं किया ?

"किया था, पर उन्हें हमने काल के गाल में पहुँचा दिया" उत्तर दिया राधेश्याम ने, "आप नर केशरियों को बहुत-बहुत साधुवाद। आपने आज इस वन को हिंसा के आतंक से मुक्त कर

दिया अब यहाँ हर जीव निडर होकर प्रकृति का प्रसाद पा सकेगा ।"

'वनराज ने भेट की यह सौगात दी है' हेमू की तरफ इंगित करके राधेश्याम ने चिंतित स्वर में कहा "ये अत्यधिक घायल हो गए हैं ।"

सन्यासी ने कुछ जड़ी बूंटियों का लेप उन पर किया बोले "जख्म विषाक्त होने का भय है नगर तक सुरक्षित पहुँचने की अस्थाई चिकित्सा मेंने कर दी है इन्हें शीघ्र ही उचित उपचार मिलना चाहिए ।"

जड़ी बूटियों के प्रभाव से हेमू की बेहोशी टूठी पर सबके मना करने पर भी वह नहीं माना, अधूरा काम छोड़ना उसकी आदत में नहीं था उसी अवस्था में अश्वारूढ़ हो ईसा खां को ढढ़ने निकल पड़ा झकमार कर सभी साथियों को साथ देना पड़ा ।

एक निर्झर के किनारे ईसाखां अपने सैनिकों सहित भोजन करके निश्चितता से विश्राम कर रहा था उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि हेमू यहाँ भी आ धमकेगा जमकर युद्ध हुआ, तपो भुमि युद्ध भूमि में परिणित हो गई धन्य है हेमू जो स्वयं मरणासन्न होने पर भी ईसाखां को परलोक पहुँचा दिया ।

हेमू दिल्ली तो पहुँचा, पर दरबार में न जा सका उसके जख्मों ने भयंकर रूप धारण कर लिया था । ईसाखाँ के कटे सर को लेकर राधेश्याम सलीम शाह के सम्मुख प्रस्तुत हुआ, सारा किस्सा सुनकर बादशाह स्वयं शाही हकीम को लेकर हेमू के महल में पहुँचे । इधर दरियादिल दरियाखाँ ने जब यह सुना कि हेमू के बचने की कोई आशा नहीं है तो तोप के धमाके सहने वाला, उसका वृद्ध रुग्न गात इस सदमें को सह नहीं सका और एक मुसलमान एक हिन्दू के लिये खुदा को प्यारा हो गया ।

हेमू जीवन में पहलीबार रोया—राधेश्याम की सिसकिया सुनकर दीवारें तक सुबक उठी स्वयं सलीमशाह की भी पलकें भीग गई एक हाथ टूट गया था दूसरा टूटना चाह रहा था—"पर क्या कहें राधेश्याम को तीन महीने तक वह हेमू की शैया के पास भूख नींद की चिंता किये बिना तीमारदारी करता रहा, एक भारतीय पतिवृता नारी की वफादारी भी उसके सामने पानी भर गई ।

सच पूछा जाये तो राधेश्याम ने दवा नहीं अपने प्राणों का लहू पिलाकर हेमचन्द को बचा लिया जब पूर्ण स्वस्थ होकर हेमू उठा तो राधेश्याम काफी क्षीण हो चुका था । आलिंगन बद्ध करते हुये हेमू ने कहा "राधे तूने मुझे नया जीवन दिया है, मैं तेरे उपकार को जन्म-जन्मान्तर तक".....बात अधूरी रही, राधेश्याम ने अपना कोमल कर हेमू के होट पर रख दिया ।

सूर सल्तनत को जितना खतरा बाहरी शत्रुओं से नहीं था, उतना राज्य के अमीरों से था ।

ये अमीर एक तरफ तो अन्दर ही अन्दर बादशाह के बड़े भाई आदिलखाँ को आक्रमण के लिये उकसाते रहे दूसरी तरफ हेमू को मरवाने के षड़यंत्र करते रहे क्योंकि हेमू की कार्य कुशलता के सामने उनकी एक न चल पाती थी । अमीरों का छल कपट अधिक दिन चला नहीं, सत्य-सत्य है झूँठ-झूँठ । ये अमीर धन की ताकत पर अन्न, वस्त्र का संचय कर बाजार में कृत्रिम अभाव उपस्थित कर देते थे फिर मनचाहे दाम वसूल कर जनता को लूटते थे इससे जहाँ रियाया कष्ट भोग रही थी वहाँ राज्य के प्रति भी आस्था उठती जा रही थी ।

हेमू ने इन्हें रंगे हाथों पकड़ा । पकड़े हुए अमीर राजाज्ञा से मौत की सजा के भागीदार हुये किसी को कुत्तों से नुचवाया गया और किसी को जिन्दा भैंसे की खाल में सी दिया गया, पर

मौत–मौत की सजा देने वाले की ताक में बैठी थी। यमराज कभी-कभी बड़ा विचित्र मजाक कर बैठते हैं।

अन्तिम दो अमीर सलीमशाह के सम्मुख पेश किये गये थे, नियाजी और सुजातखां दोनों एक नम्बर के कटार बाज थे उनके कारनामे सुनकर बादशाह ने अत्यधिक क्रोध से आज्ञा दी, "इन कमीने कुत्तों को एक एक कटार दी जाये, जिससे ये एक दूसरे के सीने में भौंक कर जहन्नुम रसोद हों।"

कटार दी गई पर दोनों शरीफ गुण्डों ने बादशाह की आज्ञा मिलते ही परस्पर कटारें भौंकने की अपेक्षा निशाना ताक कर ऐसी अचूक कटारें फेंकी कि सलीम शाह की गर्दन फोड़ कर आरपार निकल गई, दरबार में हाय तोबा मच गई। हेमचन्द ने अपराधियों को भागने नहीं दिया उन्हें भी हेमू की तलवार पर चढ़कर परलोक तक सलीम शाह का अनुगमन करना पड़ा।

पलक झपकते इतिहास ने करवट बदली। सलीमशाह का एक मात्र वारिस फिरोज इस समय कुल सात वर्ष का था उसे गद्दी पर आसीन करके अपने चहेते भाई मुवारिजखाँ को बीबीबाई ने संरक्षक नियुक्त कर दिया।

एक सात वर्ष के बालक को सिंहासनासीन जानकर विद्रोहियों ने सर उठाना प्रारम्भ कर दिया—अहमदखाँ, इब्राहीमखाँ, और मोहम्मदखाँ तीनों बड़े सूबेदारों ने एक साथ बगावत का झंडा खड़ा कर दिया—इधर हेमू राधेश्याम को साथ लेकर दुश्मनों से लड़ता रहा उधर मौका पाकर मुवारिज ने एक दिन फिरोज को तलवार के घाट उतार डाला और सुल्तान मोहम्मद आदिल के नाम से सिंहासनारूढ हो गया। यह अत्यन्त निकम्मा और बिलासी था इसका कोई काम हेमू के बिना नहीं होता था एक अनाधिकारी कायर शासक के गद्दी पर बैठने से शौले और भड़के पर हेमू और राधेश्याम अपनी तलवार से सर उठाने वालों के सर कुचलते रहे।

शाही ताकत के खिलाफ विद्रोह करने वालों में सबसे प्रबल शत्रु था अजमेर का सूबेदार जुनैद खां। उसके साथ असंख्य सैन्य बल था और वह एक कुशल योद्धा था। भयानक युद्ध हुआ नर मुन्डों से पृथ्वी पट गई पर विजय श्री हेमू के ही हाथ रही। सुल्तान मोहम्मद आदिल बहुत खुश थे। वे ग्वालियर से हेमू का बहुत शानदार स्वागत करना चाहते थे। सारे नगर को सजाया गया और अगवानी करने को स्वयं बादशाह सलामत तशरीफ लाये अपार जन समूह अपलक नेत्रों से जुलूस देख रहा था सेनापति हेमचन्द गजारूढ़ थे उनकी बगल में दो घुड़सवार चल रहे थे। लोगों में चर्चा हुई एक तो राधेश्याम जी होंगे पर ये दूसरा कौन है? इतने में ही एक बड़ा पत्थर हाथी के हौदे पर गिरा। चीख पुकार और भगदड़ में कई लोग चिथ गये। सर्वत्र एक ही बात थी सेनापति को मार डाला। हेमु की हत्या कर दी गई—किसने की? क्यों की? सब अज्ञात। बादशाह बोखला गये। गर्जे—'तत्काल कातिल को पकड़ कर सामने लाया जाये। कातिल लाया गया—लाने वाले थे स्वयं हेमचन्द बादशाह को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। पूछा 'तुम्हें तो पत्थर फेंक कर मार डाला गया था?'

हंसे हेमचन्द्र "मर जाता तो हुजूर के सामने कैसे आता?"

"तो वह हाथी पर कौन बैठा था जिसे कत्ल किया गया?"

"वह गिरधर था।"

"सिपाही गिरधर?" सुल्तान की आवाज में आश्चर्य का भाव था।

'हां सरकार।' उत्तर दिया राधेश्याम ने 'गिरधर हेमचन्द्र जी का हमशक्ल था—मुझे रात एक सपने में ऐसा लगा कि जुलूस में हेमचन्द्र जी को कत्ल कर दिया गया है और मैंने भावी की आशंका से इन्हें विवश किया कि ये हाथी पर न बैठे बल्कि अपनी सेना के ही एक सिपाही गिरधर को जो कि इनके हम

शक्लथे सेनापति के लिबास में हाथी पर बैठा दिया, योजना बनी कि हम दोनों सुरक्षा के लिए वेष बदल कर घोड़ों पर उसके दायें बायें चलेंगे—पहले तो हेमचन्द्र गिरधर की जान को खतरे में डालने को तैयार ही नहीं थे पर जब इन्हें समझाया गया कि राष्ट्र के लिए गिरधर के प्राणों से अधिक मूल्य आपका है तो ये माने और शहनशाहे आलम ने देखा कि खादिम का सपना सच्चा हुआ। हेमचन्द्र जी के बचने की खुशी है पर गम है तो गिरधर के मारे जाने का।"

'उलझन दूर हुई' बादशाह ने कहा 'राधेश्याम इसी को तो कहते हैं दिल की आवाज, सच्ची दोस्ती, तुमने अपनी होशियारी से न केवल दुश्मनों की चाल को नाकामयाब कर दिया बल्कि हेमू को खोकर राज्य की जो कमी, न पूरा होने वाला नुकसान होता, वतन को उससे बचा लिया।

'पर हुजूर गिरधर की बेवा और उसके बूढ़े बाप को जहां वे रहते हैं उसी इलाके की जागीर बख्शी जाए जिससे उनके कुछ तो आँसू पुँछाई हो।'

हेमू अपनी बात पूरी कह भी नहीं पाए कि उन पर सहसा आक्रमण हुआ 'ये ले जागीर' शम्स खां की तलवार हेमु पर वार करने को चली। वार झेला राधेश्याम ने। शम्सखां के नेत्रत्व में जिन अमीरों ने ईर्षा वश हेमचन्द्र के प्राण लेने को यह षडयन्त्र रचा था उसे असफल हूआ देख खुल कर मेदान में सामने आ गए। गृह युद्ध की यह एक वेमिसाल मिसाल थी हेमू और राधेश्याम गाजर मूली की तरह अमीरों को काटने लगे, थोड़ी देर में मैदान साफ हो गया।

पत्थर फेंकने वाला बन्दी जुम्मन बादशाह के सामने पेश किया गया। उसने अपना अपराध स्वीकार करते हुए बताया कि अमीरों के सरगना शम्स खां ने उसे काफी धन देने का वायदा

करके इस काम के लिए तैयार किया था गरीबी और लोभ के के कारण उससे यह खता बन पड़ी—शहनशाह का क्रोध बरसे उससे पहले ही अपने बाँसुरी से स्वरों में राधेश्याम ने सुल्तान आदिल से आग्रह कर जुम्मन को क्षमा करवाते हुए कहा, "यह बेचारा तो पेट की ज्वाला में जला बदमाशों का एक मोहरा मात्र था।"

इस प्रकार हेमू और राधेश्याम की कर्तव्य परायणता, वीरता और उदारता ने धीरे २ सभी विरोधियों के मुँह बन्द कर दिए। पर अफगानों की आपसी फूट ने राज्य के अनेक टुकड़े कर डाले अकेला हेमू क्या क्या करता, वह विद्रोही ताजकर्रानी के पीछे जौनपुर की तरफ भागा, इधर इब्रहीमखाँ सुर ने दिल्ली हथियाली, बूढ़ा बादशाह चुनार के किले में फाटक बन्द कर बैठा था। रोज रोज बुरी खबरें सुन कर बादशाह परेशान हो उठे पर बिना हेमू के उनसे कुछ करते न बनता था। बहुत प्रतीक्षा के पश्चात एक दिन परिचारिका ने शुभ सुचना दी 'हुजूर हेमचन्द सरकार अपने दोस्त के साथ तशरीफ ला रहे हैं।'

सुनते ही सुल्तान नंगे पाँओं दौड़ा, किले के बाहर आया 'हेमू तुमने इस बार बड़ी प्रतीक्षा कराई, यदि इस किले के तहखाने भूल भूलैया जैसे न होते तो तुम्हें बादशाह नहीं बादशाह की लाश मिलती।'

हेमू ने टोका 'लाश मिले दुश्मनों की सरकार की उम्र तो चाँद सितारों जितनी लम्बी है। और अब तो सरकार ने २०० जंगी हाथी खरीद कर सेना के हाथ और भी मजबूत कर दिए हैं। हम सब दुश्मनों को देख लेंगे।

'देख लेना! देख लेना!! पहले कुछ आराम करो। तुम्हें पाकर हमें बहुत सुकूं मिलता है और तुम्हारे मित्र की लज्जत भरी बातें तो हम भूल ही नहीं पाते।'

शरारत से हेमू ने मुस्कराकर राधेश्याम की तरफ देखा हुजूर मैं भी यही सोचता हूं कि **खुदा उन्हें मर्द न बनाकर स्त्री बना देता तो ये कहीं की मलिका होती ?**

'खाक होती मलिका ? और फिर मलिकायें ही कौन सी सुख में है सोने के पिजड़े में कैद परिंदा, क्या वे मुझ जैसी आजाद रह सकती हैं ?

'वाह ! औरत न होते हुए भी औरतों की क्या तरफदारी की है।' दाद दिए विना न रह सके मुल्के आजम ।

'परवर दिगार मैं ही जानती हूँ कि मैं इन्हें कैसे भुगतती हूँ' राधेश्याम का सम्बोधन बादशाह को था और इशारा हेमू की तरफ ।

अनायास ही भावुकता में बहकर सचाई प्रकट हो जाने से राधेश्याम झेंपा। वह बात को संभाले इससे पहले ही बादशाह ने उसे चौंक कर देखा और हेमू ने कहा 'राधे अब और इस अभिनय की आवश्यकता नहीं रह गई है, हुजुर के सामने जब भेद खुल ही गया है तो छुपाना बेकार है ।

सुल्तान ठहाका मार कर हँस पड़े, 'हमें शक तो पहले से ही था पर इनकी बहादुरी हमें चक्कर में डाल देती थी।'

'यह बहादुरी क्या ये प्राण भी इन्हीं की देन है' राधे ने निसंकोच हेमचन्द्र की तरफ देखा ।

हेमू ने राज खोला 'हुजुर आपको पता ही है कि मैंने और राधे ने किस तरह मरहूम शेरशाह को अलवर के जंगल में डाकू भानुसिंह से बचाया था उसी बन में इस घटना से एक वर्ष पूर्व मैंने अचानक एक स्त्री की चीख सुनी देखा कुख्यात डाकू फूलासिंह एक स्त्री को जबरन घसीट रहा है और वह अपने को छुड़ाते हुए सहायता के लिए भरसक चीख रही है। मैं पर्वत के शिखर से सीधा फिसला और फूलासिंह को ललकारा— डटकर द्वन्द्व हुआ और ईश्वर कृपा से वह मेरे हाथों खेत रहा।

बात काटी सुल्तान ने 'और वह स्त्री थी राधा।'

'परवर दिगार का अनुमान सही है। राधा अपने भाई, चाचा और पिता के साथ कार्यवश राजगढ़ जा रही थी इन चार प्राणियों को फूलासिंह के पन्द्रह आदमियों ने घेरा, वे दश्यु दल को मारते हुए दिवंगत हुए—शेष बचे डाकुओं और फूलासिंह को मैंने नर्क पठाया और इन्हें बचाया। कहा घर छोड़ आऊँ ? पर ये सुबक पड़ी 'अब मेरा घर पर है ही कौन सबको तो इन नीच लुटेरों ने मार डाला' तभी से ये छाया की तरह मेरे साथ है। मुसीबतों से बचने के लिए इन्हें पुरुष वेश ही नहीं धारण करना पड़ा असि और अश्व संचालन भी सीखना पड़ा—तीरंदाजी में तो मैं भी इनका मुकाबला नहीं कर सकता।'

राधेश्याम एक क्षण में राधा बनते ही नारी सुलभ संकोच से कुछ बोल न सका।

बादशाह की आँखे प्रसन्नता से चमक उठी 'हमें यह सुनकर निहायत खुशी हुई है। आज हम तुम दोनों को अपने खुद के हाथी हवाई पर बैठा कर एक साथ देखना चाहते हैं।'

हेमू और राधा संकोच से ना ना करते रहे पर बूढ़े बादशाह के बचपने के सामने उनकी एक न चली। दोनों को मस्त गजराज पर बैठाया, शहनशाहे हिन्द इन युगल प्रेमियों को देखकर आनन्द बिभोर हो उठे—किले के सिंहद्वार में प्रवेश करते ही अति उल्लास से सुल्तान मोहम्मद आदिल ने जोर से सिंहनाद किया 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य.....और सहस्त्रों कंठों ने उत्तर दिया जिंदाबाद। पर सिवाय बादशाह के सबकी दृष्टि में राधा अब भी राधेश्याम ही था।

\+ \+ \+

यह सौलहवीं शताब्दि भारत के लिए अत्यन्त संकट का काल था। राजनैतिक उथल-पुथल आपसी फूट, लूट, धर्मान्धता

भारत और दिल्ली के वैभव की चर्चायें सुन सुन कर लोलुप विदेशी आतताइयों के आक्रमण, विद्या कला और व्यवसाय की क्षति, जगह जगह निरंकुश छोटे-छोटे शाशक, निरीह जनता में हा हा कार।

शेरशाह से हार कर हुमायूँ काबुल भाग तो गया पर वह एक दिन भी चैन से बैठा नहीं अपने जासूस से यहाँ के हालात जाना करता था और अवसर की ताक में था। भारत की इस विश्रृंखल स्थिति को उसने सुनहरी मौका समझा और पन्द्रह सहस्त्र अश्वारोहियों को लेकर भारत की धरती को रोंदता हुआ दिल्ली की तरफ अग्रसर हुआ। भाग्य से पेशावर में उससे बैरमखाँ जैसा रण निपुण और कूट नीतिज्ञ सहायक, कन्धार के प्रशिक्षित सैनिकों की विशाल वाहिनी के साथ आ मिला। इस सम्मलित शक्ति ने सर्व प्रथम पंजाब के रोहताश दुर्ग पर आक्रमण किया जो कि अफगानों की शक्ति का केन्द्र समझा जाता था। अफगान दुर्गपति तातार खां प्राण बचाकर भागा। मुगलों के आतंक से लाहौर, जालंधर और सरहिन्द के शाशकों ने विना प्रयास ही सर झुका लिये।

उन दिनों दिल्ली में सिकन्दर शाह सूर था। उसने जब हुमायूं को इधर बढ़ते हुए सुना तो तातार खां और हवीबखाँ के नेतृत्व में तीस हजार घुड़सवार दिल्ली सें रवाना कर दिये अफगान और मुगल दोनों ही अपने को अपराजित समझते थे, दोनों विजय के नशे में चूर थे आखिर मछीबारा में सतलज के दोनों किनारे मोर्चे लगा दिए गए।

मुगल चार पांच दिन पहले आकर थकान उतार चुके थे, और अफगान थके हुए प्रथम रात्रि को प्रगाढ़ निद्रा में थे कि बैरमखाँ के संकेत सें कुछ कुशल सैनिक चुपचाप नदी पार कर गए व रातों रात अफगानों को सदा की नींद सुलाकर विजय की दुन्द भी बजादी। मैदान तो मार लिया पर दिल्ली अभी दूर थी।

सिकन्दर शाह सूर सतलज के किनारे सेनापति की गफलत और बैरमखां की चाल के कारण पिटा अवश्य था पर दिल्ली और दिल्ली की नाक लाल किला अब भी उनके हाथ में था। दिल्ली का स्वामी बनकर वह समझ बैठा था कि वह पूरे भारत का शहनशाह हो गया है पर जब उसे एक तरफ से हुमायूं और दूसरी तरफ से हेमू के आगमन की सूचना मिली तो कूये और खाई के बीच में पाकर बौखला गया पर मरता क्या न करता। उसने अपनी सम्पूर्ण सेन्य शक्ति को दो भागों में बाँटा एक भाग को हवीबखां के नेतृत्व में दक्षिण पूर्व में हेमू को रोकने भेजा और दूसरे भाग को तातारखाँ की संरक्षण में तीन हजार योद्धा देकर मुगलों को मार भगाने केलिए रवाना किया।

हुमायूं की सेना में मायूसी छा गई, जब उन्होंने सुना कि समुद्र की तरह उमड़ती हुई अफगान सैना फिर चली आ रही हैं अफवाहें बढ़ चढ़ कर पहुंच रही थी 'दुश्मन का एक एक हाथी दस दस मन की जंजीरे घुमाकर मार करते है' घोड़ों की संख्या तो गिनना ही मुश्किल है, आदि-आदि। मैदान जीत लेने पर भी सतलज के किनारे की मार अभी तक ताजा थी इस नई विपत्ति से वे घवरा गये पर बैरमखां ने उनमें बिजली भर दी। उन्हें मजहब याद दिलाया उन्हें सब्ज बाग दिखाये, उन्हें विवशता दिखाई कि वे भाग कर भी जीवित लौट नहीं सकते। परिणाम स्वरूप भयंकर लोहा बजा। तातारखाँ बड़ी वीरता से लड़ा, जीत हो भी जाती पर बैरमखाँ की कुशाग्र बुद्धि काम कर गई उसने मशालें लेकर अग्नि युद्ध करने का सैना को संकेत किया—आग देख कर हाथी चिघाड़े, बिगड़े और अपनी ही सेना को पीसने लगे—घवराई हुई सेना में स्वयं हुमायूं कुशल घुड़सवार लेकर पिल पड़ा इस प्रकार बेरमखां ने इब्राहिम सूर को पानी पिला कर लालकिले पर मुसलमानी झण्डा फहरा

दिया। बादशाह हुमायूं जिन्दाबाद। अल्लाह हो अकबर के नारों से धरती आकाश गूंज उठे।

यद्यपि हुमायूं ने दिल्ली को फतह कर लिया था पर चारों तरफ शत्रुओं से घिरा हुआ था।

मुगल अधिकृत क्षेत्र का हुमायूँ द्वारा नियुक्त प्रशासक तर्दी बेग, किया खां काक जैसे कुशल जासूस के द्वारा हेमू के सैनिकों में विष फैलाना चाहता था पर राधेश्याम की गृद्ध दृष्टि से वह छुपा न रह सका। बुर्का पहने हुये होने पर भी उसे जूतों से पहिचान कर राधे ने भागते-भागते उसका भी हाथ काट डाला था। वह जाकर तर्दी बेग के सम्मुख रोया कि हेमू ने फौज में शायद औरतों को भी भर रखा है उसकी इस बात का अविश्वास करते हुये खफा होकर तर्दीबेग ने फौरन आँखों के सामने से दूर हो जाने को कहा।

हेमू ने बड़ी कुशलता से अपने भेदियों को दिल्ली में प्रवेश करा दिया और बिना भोर की प्रतीक्षा किये आधी रात को तर्दी बेग पर हमला बोल दिया। नगर के अन्दर और बाहर की दुतर्फी मार से वह दो पाटों के बीच कुचल गया और **सुबह की नई किरण के साथ हेमू ने मुगलों से दिल्ली छीन ली।**

सम्भल का शासक शादी खां जो हेमचन्द का प्रधान सेनापति तथा हेमचन्द के भतीजे महिपाल ने हेमू को आग्रह किया कि अब आप इस रिक्त सिंहासन पर बैठ कर इसकी शान में चार चाँद लगायें। हेमू किसी तरह तैयार ही नहीं हो रहा था बोला "यह मोहम्मद आदिल से बेवफाई होगी" पर राधे ने समझाया **यह प्रश्न बफाई का नहीं राष्ट्र की रक्षा का है।** समर्थन किया शादी खाँ ने **"हुजूर इस समय भारत के घोर अंधकार पूर्ण आकाश मंडल पर एक मात्र चमकते हुये चांद आप ही हैं जिससे कुछ रोशनी की आशा है। अब हम अधिक दिन एक**

नाकाबिल, नपुंसक बादशाह के आधीन नहीं रह सकते। आखिर राधे की आँखों में पानी देखकर हेमू सिंहासनासीन हुआ।

महिपाल ने जय घोष किया "भारत सम्राट की जय हो" शादी खां ने स्वर मिलाया "महाराजा धिराज हेमचन्द्र विक्रमादित्य की जय" गूज से लाल किले की दीवारें हिल उठी।

हेमचन्द्र ने दरबारियों को बड़ा मार्मिक भाषण दिया "समय के संकेत ने हमें सिंहासन पर बैठने को विवश किया। **हिन्दू और मुसलमान राज्य की दो आँखे है। सैनिक ही शासन का वास्तविक संरक्षक है व्यापारी और कलाविद राज्य की शान है। न्याय सत्ता का आधार है। हमारे राज्य में सबको फलने-फूलने का समान अवसर दिया** जायगा। हर व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करे और अपने दुख दर्द से हमें अवगत करें। संगठन ही शक्ति हैं आदि आदि" इस घोषणा के पश्चात हेमू ने मुस्करा कर कहा "इस सुप्रभात में हम एक राज और खोलते है :— **जिन्हें आप हमारे मित्र के रूप में आज तक जानते आये हैं और जिनकी वजह से हमे इतनी फतह हासिल करके आज इस सीढ़ी तक पहुँच सके वे राधेश्याम नहीं राधे है पुरुष नहीं स्त्री है"**

जनता की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा-राधे अपनी नकली मूँछ हठाये उसके पूर्व ही "मलिकाये हिन्दुस्तान" के नारे से कर्ण रंध्र फटने लगे। रियाया के आग्रह पर राधे को हेमू के पार्श्व में बैठना ही पड़ा, भारत के उस सौभाग्य का वर्णन कर सकू ऐसी लेखनी लाऊँ तो कहां से लाऊँ।

इस अवसर पर शादीखां ने निवेदन किया कि मेरा एक सुझाव है, वजीरे आजम का पद महारानी जी को ही क्यों नही दिया जाये, इनसे योग्य और मिलेगा भी कौन ?

"यदि प्रजा यह चाहती है और राधे को कोई ऐतराज न हो तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है"—

इस प्रकार राधा के अस्वीकार करते रहने पर भी जनता के सहस्त्रों कठों ने उन्हें भारत का प्रधानमन्त्री पद पर सुशोभित कर ही दिया। जन भावना के सम्मुख राधा को नतमस्तक होना ही पड़ा।

सेनापति बनाये गये रंण पुंगव रमैया।

महल के जीने से गिरकर मुगल सम्राट हिमायू का प्राणान्त हो चुका था। और कालानोर में शहजादे अकबर का राज्याभिषेक कर बैरमखां जैसे चाणक्य को उसका सरक्षक और शिक्षक नयुक्त कर दिया गया था तो भी बालक अकबर एक प्रकार से बिना साम्राज्य का शाशक था। यह समय मुगलो के लिये अत्यन्त कष्ट का था।

बैरमखां ने जब सुना कि हेमू ने मुगल सेना को मार भगाया है और दिल्ली का शासक बन बैठा है तो वह क्रोध से अंट शंट प्रलाप करने लगा। नन्हें अकबर ने सुना तो दौड़ा आया "खान बाबा आप की तबियत तो ठीक है ?"

"ठीक है बेटे पर उस बनिये के बच्चे ने मेरा खाना खराब कर रहा है।

"कौन बनिये का बच्चा बाबा ?"

"वही अग्रवाल बनिया हेमू"।

पर बाबा आप तो कहते थे बनिये तलवार नहीं तराजू पकड़ते हैं।"

"यह बनिया तराजू नहीं तलवार पकड़ता है बेटा। अकेले ने मुगलों और अफगानो जैसी दो ताकतो के नाको दम कर रखा है- दिल्ली के पाक सिंहासन पर एक काफिर बैठा है।"

'दिल्ली तो मेरे बाप दादों की है बाबा मैं उसे लेकर छोड़ूगा' अकबर का हाथ अपनी छोटी सी तलबार पर चला गया।

"जरूर लेंगे बादशाह बेटे जरूर लेंगे" बैरमखाँ ने स्नेह से अकबर का मुह चूम कर गोद में ले लिया।

आवश्यक व्यवस्थायें कर हेमू की अनुभवि निगाहे जीर्ण शीर्ण किले पर पड़ी। दिल्ली युद्धों का केन्द्र रहा है और किसी शासक को इतना अवकाश नही मिला कि इसकी मरम्मत करवाता। युद्धों के आघातों से वह स्वयं ही अशक्त हो गया था दूसरों की रक्षा क्या करना। हेमू ने अपनी देख रेख में उसका जीर्णोद्धार करवाया।

बैरमखां इधर तो सैनिक शक्ति बढ़ा रहा था उधर छल कपट भी अपना रहा था। अन्दर ही अन्दर उसने हेमू के कुल दल नायकों को फोड़ लिया-यवनो में साम्प्रदायिकता अधिक रही है और हेंमू की सैना में मुगल काफी उच्च पदों पर थे कुछ परम्पराके कारण स्त्री के मन्त्री होने से भी नाखुश थे– अतः वैरमखां से आन्तरिक संधी करली पर ऐसे कुछ ही नीच लोग थे अधिकतर मुगल और अफगान हेमू के खैरख्वाह ही थे।

बैराम खाँ के दिल्ली की तरफ सैसन्य बढ़ने का समाचार पाकर हेमू ने दस हजार घुड़सवारों के साथ सेनापति रमैया को रवाना कर दिया कहा "दुश्मन कोई भी हालत में पानीपत के मैदान से आगे न बढ़ने पाये। प्रतिकूल स्थिति देखो तो हमें तत्काल सूचित करना, अभी दिल्ली को सूनी छोड़कर जाना मेरे लिये उचित नहीं है।"

रमैया मौत की तरह लड़ा, मुगलों में हा-हा कार मच गया पर यह देखकर रमैया के आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि मुबारक खाँ और बहादुर खाँ अपने सिपहसालार होते हुए भी मुगलों की तरफ से लड़ रहे हैं, "गद्दार कहीं के" दाँत पीसकर उसने क्रोध से घोड़े के ऐड़ लगाई इधर हेमू के स्वयं के रण में न होने से बैराम खां के होसले बढ़ रहे थे, उसका दिमाग और हाथ रात दिन काम कर रहे थे।

कमजोर समाचार पाकर तीसरे दिन हेमू स्वयं पन्द्रह सो पर्वताकार हाथी लेकर मैदानेजंग में आ डटा उसकी मोर्चाबन्दी देखने काबिल थी—मध्यभाग में हवाई हाथी पर सबसे ऊँचा हेमू, दक्षिण भाग में शादीखां कोंकर और बाम भाग में रमैया सैना को साधे खड़ा था। हाथियों की कतार के मध्य में गालिब जंग हाथी पर सीना ताने फौजदार हसनखां, बाईं ओर गज भँवर पर मकैल खां, और दक्षिणी ओर जोर बनिया हाथी पर इख्तियार खाँ मुगल सैना को [illegible]ग्नेय नेत्रों से देख रहा था, अफगानों और राजपूतों की इस मिली जुली सैना ने मुगलों के छक्के छुड़ा दिये। पानीपत के इस मैदान ने बैरमखां जैसे धूर्त व्यक्ति को भी एक बार पानी पिला दिया।

मुगल तोप के गोले छोड़ने लगे, धूल [illegible] और हाथियों की चिंघाड़ से कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था, चारों [illegible] मारकाट, हा-हा कार, बैराम खां अपने शाही शिविर में [illegible]तित टहलता हुआ अपनी आदत के अनुसार बड़बड़ा रहा था और [illegible]निक पर सैनिक अशुभ समाचार ले ले कर आते रहे।

"दुश्मन के हाथी न केवल सैना को पीस रहे हैं बल्कि उनकी एक एक जंजीर सौ सौ सैनिकों का एक साथ सफाया कर रही है।"

"हुज़ूर हमारा हराबल पीछे हट रहा है।"

"सरकार अब्दुल्ला उजबेग हेमू की बर्छी के शिकार हो गये।"

"शेरवानी की लाश तड़प रही है हुजूर।"

"किसने मारा शेरवानी को ?" बैरमखां शेर की तरह गर्जा उत्तर मिला, "सरकार दुश्मन बादशाह की बगल में एक छोटे कद का गोरा सा सरदार है उसी की तलवार ने शेरवानी को मौत के घाट उतारा है, हमारे आधे से अधिक सरदार [illegible] चुके हैं।"

"जाओ और जैसे भी हो हमें दुश्मन की मौत की खबर सुनाओ" बरस पड़ा बैरमखां संदेश वाहकों पर—खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे।

इधर हेमू को भी अशुभ समाचार मिला "महाराज ! सेनापति रमैया मारा गया।"

सुनते ही हेमू तीर की तरह शत्रु दल में घुस पड़ा। राधा बराबर उसका साथ दे रही थी और मनाकर रही थी कि हमारे सैनिक काफी पीछे रह गये हैं इस तरह शत्रु दल में घुस पड़ना खतरनाक है पर रमैया की मौत से हेमू क्रोधान्मत्त हो गया था सामने गद्दार मुबारकखां और बहादुरखाँ को दुश्मन की तरफ से लड़ता देख कर उसका खून खोल उठा। हेमू ने ललकार कर मुबारकखाँ पर तीक्ष्ण भाला चलाया पर वह हेमू के साथ कई युद्धों [illegible] चुका था वह पलट कर बार बचा गया इधर पीछे से बहा[illegible]खां ने हेमू पर प्रहार किया राधा ने लक्ष संधान कर एक [illegible] तीर से बहादुरखां को सदा के लिए छुट्टी कर दी पर हेमू ने जैसे ही पीछे मुड़कर इस घटना को देखा राधा के सतर्क करने पर उसने जैसे ही गर्दन वापस सामने घुमाई एक अचूक तीर उसकी आँख में घुस कर गर्दन के पार निकल गया। वेदना से हेमू के मुँह से उफ ! निकल गया— उस[illegible] अपने ही हाथ से तीर निकाल फेंका। इधर राधा पबन [illegible]ात से हेमू के होदे पर चढ़ गई और अपना वस्त्र फाड़ कर हेमू की आंख पर पट्टी बाँधी। इस बीच मुबारकखाँ ने हेमू के हबाई के तीन पाव काट डाले चौथे पाँव पर चोट होते ही वह चिंघा[illegible] कर होदे सहित गिर पड़ा। हेमू को शत्रु दल के बादलों ने घेर लिया जीती हुई बाजी जरा सी चूक से पलट गई।

म[illegible]कखां हेमू के आहत शरीर को ले उड़ा। राधा ने [illegible] कया पर शादीखां ने उसका हाथ पकड़ लिया

"अब कुछ भी करना बेकार है," शादीखां की बदमियत जान राधा ने एक कटार उसके कलेजे में भौंक दी। पर शत्रु दल को 'यह रही हेमू की बेगम, यह रही हेमू की मलका' चीखते हुए अपनी तरफ दौड़ते देख हरिइच्छा जान लौट जाना ही उचित समझा।

पतिविहीन स्त्री के समान दिल्ली को पाकर बैरमखां ने अकबर का हाथ पकड़ कर सिंहासन पर बैठा दिया और जय घोष किया 'जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर' हजारों आवाजों ने उत्तर दिया जिंदाबाद्र।"

लम्बा चौड़ा बैरम खाँ सिंहासन के निकट ही नँगी तलबार लिए खड़ा था— नजराने लिए जा रहे थे, जंग के बहादुरों को इनाम इकरार बांटे जा रहे थे, इस ताज पोशी के समारोह से अवकाश पा जंजीरों में जकड़े जख्मी हेमू को पेश किया गया। वह सिंहासन से काफी दूर ही था कि एक कर्कश ध्वनि कानों में पड़ी 'बस बस वहीं रुक जा'

'बैरमखां को देखकर हेमू घृणा से बोला 'ओह। एक गुलाम बोल रहा है।'

"खामोश रह शैतान।" बेरमखां जोश में होश भूल कर बोला।

'मालूम होता है इतनी उम्र तक बात करने की तहजीब नहीं आई कि एक बादशाह के साथ कैसा वर्ताव किया जाता है'

बात बढ़ती देख अकबर ने हस्तक्षेप किया 'तो क्या तुम अब भी अपने को बादशाह ही समझते हैं ?'

'अकबर तुम अभी बच्चे हो, क्या तुम्हारे इस खूसट शिक्षक ने तुम्हें बड़ों से बात करने का तरीका नहीं सिखाया ? आज जिस सिंहासन पर तुम बेठे हो कल उस पर मैं बेठा था। सारी मुगल सेना मेरे नाम से काँपती थी, बेरमखां की नींद

हराम थी—भाग्य की बात है मेरी जरासी भूल या असावधानी ने मुझे इस हालत में पहुँचा दिया इसका यह मतलब नहीं है कि मैं 'तू' पुकारा जाने लगा। यदि ऐतवार न हो तो मुझे एक तलवार सोंपदी जाये अभी साबित कर देता हुँ कि शहनशाह आप हैं या मैं।'

बैरमखां झुँझला कर आवेश से कुछ बोले इससे पूर्व ही अकबर ने उसे झिड़क दिया। 'दो बादशाहों के बीच आपको बोलने की जरूरत नहीं है खान बाबा' फिर हेमू से मुस्करा कर कहा 'हम तुम्हारी बहादुरी और इस दशा में भी ऐसे ऊँचे बिचार रखने से बहुत प्रभावित हैं, आजादी के अलावा आपकी हर ख्वाहिश पूरी की जायेगी।'

'हेमू ने हमेशा अपने बाजुओं की ताकत से हर चीज ली है, भीख या दया उसे नहीं चाहिये।'

'इसे चाहिये मौत' बैरमखां चुप न रह सका।

'सब्र करो खान साहेब हमें कैदी बादशाह से कुछ बातें कर लेने दो।"

बस अब मुझें कुछ नहीं चाहिये आपने-अपने मुँह से जब मुझे बादशाह कह दिया तो मेरी हर इच्छा पूरी हो गई।"

गुरू की आज्ञा का पालन कर अकबर ने हेमु का सर तलवार से छू भर दिया कहा "मरे हुये को मारना हमारी शान के खिलाफ है" और....और....क्रूर बैरमखां ने तलवार के एक ही हाथ ने बँधे हुये हेमू का सर काट डाला।"

शत्रुओं के संमिको ने राधा का पीछा बैजवाडा तक किया बाद में कमानखाँ आदि कुछ वीर योद्धा राधा की सहायतार्थ आधमके ! उन्होने राधा को बहुत उकसाया भी कि "हम लोग सैन्य संगठित कर दिल्ली को फिर से हस्तगत कर सकते हैं पर राधा की सारी इच्छा ये हेमू के साथ समाप्त हो गई थी वह मुसीबत के उन्हीं चन्द साथियों को लेकर वेष बदल लाल किले

के बाहर भीड़ में जा घुसी और जैसे ही एक सैनिक हेमू के कटे सर को लेकर बाहर निकला चील झपट्टे की तरह रानी ने झपटकर हेमू का सर ले लिया और मुगल सैनिकों को मार काट करती निकल भागी पीछे कमालखाँ साथियों सहित लड़ता रहा।

बैरमखां ने सुना। अकबर ने सुना। और सुना सारे मुगल दरबार ने इतोने सूचना दी 'लाख पीछा करने पर भी राधा हाथ नहीं आई।"

अकबर बोला, "आंधी और बाढ़ भी किसी के रोके रुकी है" पर अब वह है कहां ?"

"वह हेमू के पास चली गई"

"क्या मतलब ?" बालक अकबर समझ नहीं पाया।

"परवरदिगार हमारे पहुंचने से पहले ही खुदबखुद आग में जल कर भस्म हो गई।"

"भस्म हो गई ? खुद ब खुद ? यह क्या बेवकूफी है ?" उत्तर दिया बैरमखाँ ने "बेवकूफी नहीं शहनशाहे आलम यह हिन्दू धर्म की एक रस्म है, शौहर के मर जाने पर उसकी लाश के साथ बीबी हँसते हँसते चिता में जलकर सती हो जाती है।"

सती क्या होती है यह तो अकबर सहसा नहीं समझ पाया पर मन ही मन उसने सतिमान को प्रणाम किया उन्होंने ठंडी स्वांस खींच कर कहा जिसने सूर सल्तनत की तीन पीढ़ी सेवा की जिसका लोहा मुगल मान गये जिसके नाम का झंडा सारे भारत में बजा उस हिमालय जैसे शख्स से आज दुनिया महरूम हो गई और उसकी मलिका राधा जिसने सारी औरत जात का सर ऊँचा कर दिया मुगले आजम आज उसके आगे झुकते हैं" अकबर के चाबुक मन ने दोनों का जयजयकार किया और जलालुद्दीन अकबर की पलके भीग गई।

....और भामाशा दुबारा मर गया

'तुम्हें बिना कमाया धन मिल गया है ना इसीलिये तुम्हें घमण्ड हो गया है। तुम उसका तिरस्कार कर रहे हो, मेरी आज्ञा की अवहेलना कर रहे हो। सब सम्बन्धियों के बच्चे विवाह में आभूषण पहिन कर आयेंगे और मेरा पौत्र भिखारी जैसा जायेगा। जाओ! मेरा तुम पर क्या अधिकार है, मैं होता ही कौन हूँ तुम्हें कहने वाला" और सेठ बच्छराज जी पांव पटकते हुये क्रोध में तेजी से चले गये।

रह गया बाल्यावस्था और युवावस्था की वयसंधी पर खड़ा हुआ सत्रह वर्षीय पौत्र जमनालाल।

जमनालाल का जन्म जयपुर राज्य के एक छोटे से गाँव 'काशी का वास' में सन् १८८९ की चार नवम्बर को हुआ था। बालक पांच वर्ष का ही था कि उसे सेठ बच्छराज जी ने अपने पौत्र के रूप में गोद ले लिया और व्यवसाय के कारण वर्धा जा बसे।

बच्छराज जी के एक निकट सम्बन्धी के यहां विवाह था। यह वह युग था जब अग्रवालों के ही क्या पूरे वैश्य समाज में मारवाड़ियों में यह प्रथा थी कि वे समारोहों पर कन्याओं को ही नहीं बालकों को भी सलमें-सितारे, जरी-गोटे के चमकदार

वस्त्र व स्वर्णालंकार पहिनाते थे । इसमें गृहस्वामी अपनी शान समझते थे । इसी रिवाज का अनुसरण कर बच्छराज जी अपने दत्तक पौत्र को भी अपनी मान मर्यादा के अनुकूल प्रदर्शन की वस्तु बनाकर विवाह में ले जाना चाहते थे पर सादा जीवन उच्च विचार वाले इस युवक को दादा जी की बात नहीं जँची ।

बच्छराज जी के व्यवहार ने उसे मर्माहत किया और विवाह में जाने के बजाय वह उनकी कटूक्ति पर विचार करने लगा । आखिर वह चिन्तन शील भावुक युवक अपनी टूटी-फूटी भाषा में एक पत्र लिखकर वहां से चल दिया। पत्र क्या था जमनालाल की आत्मा का दर्पण था। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह जीवन में उनके धन को नहीं छूयेगा ।

सेठ बच्छराज जी ने जब वह पत्र पढ़ा तो उन्हें अपने व्यवहार पर बड़ी आत्म ग्लानि हुई । धार्मिक प्रवृति के उस वृद्ध पुरुष को इसमें अपना ही दोष दिखा और प्रायश्चित स्वरूप वह तत्काल अपने दत्तक पौत्र को ढूँढने निकल पड़े और उसे मना लाये । इस छोटी सी घटना के कुल एक मास पश्चात सहसा ही बच्छराज जी स्वर्ग सिधार गये और उनकी धन राशि व व्यवसाय के एक मात्र स्वामी बने जमनालाल जी । पर उस कलयुगी हरिश्चन्द्र ने जो बात आवेश में आकर अपने पत्र में लिखदी थी उसका अक्षरस पालन किया । दादा के व्यापार को बड़ी मेहनत व ईमानदारी से कैई गुणा बढ़ाया जिसके लिए स्वयं गांधी जी ने कहा था कि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जमनालाल के पास एक पाई भी बेईमानी की नहीं है । मरते समय बच्छराज जी ने जितनी पूँजी घर दुकान में छोड़ी थी, जमनालाल जी ने अपने को उसका स्वामी नहीं मात्र ट्रस्टी माना और बाद में उसका एक-एक पैसा दान कर दिया ।

ऐसा निर्लोभ और निरासक्त होना क्या सहज ही है ?

जन्म देने वाले माता पिता के लाड़ प्यार से अल्पायु में ही वंचित हो कर पराई गोद में बैठे और जिस गोद में बैठे उसमें शिक्षा का नहीं व्यवसाय का अधिक महत्व था ! कुछ युग का दोष था कुछ बच्छराज जी की रूढ़िगत भावना का, अतः कुल दस वर्ष की अवस्था तक ही जमनालाल जी पढ़ पाये किन्तु अपनी व्यवसाय, बुद्धि, दूर दर्शिता, उद्यमशीलता, साहस व ईमानदारी के कारण न केवल वे देश के अग्रगण्य व्यवसायी बनकर चमके, समृद्धिशाली और प्रतिष्ठित बने, अपितु जीवन के हर क्षेत्र में सफलता ने उनके चरण चूमे ।

सन १९२० की बात है, नागपुर में कांग्रेस महा सभा का अधिवेशन चल रहा था । स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित वह एक महत्व प्रद अधिवेशन था । नेत्रत्व था पूज्य बापू का । स्वागताध्यक्ष थे जमनालाल जी । गाँधी जी ने सर्व साधारण के सम्मुख इस अधिवेशन में जमनालाल जी को अपना पाँचवा पुत्र घोषित किया और कहा कि "ऐसा पुत्र शायद पहले किसी को नहीं मिला होगा । योग्य पिता को मिला योग्य पुत्र और योग्य पुत्र को मिला योग्य पिता ।

जब जमनालाल जी को गांधी जी जैसा युग का सर्वश्रेष्ठ मार्ग दर्शक मिल गया तो उसकी रोशनी में वे हिमालय की ऊँचाई तक चढ़ते गये । बाद में इस धर्म पिता की ही भाँति इन्हें धर्म गुरू मिले संत विनोबा जिनके आदर्शों का उन्होंने जीवन पर्यन्त निर्वाह किया ।

जमनालाल जी नागपुर अधिवेशन से लेकर अंतिम क्षण तक कांग्रेस कार्य समिति के कोषाध्यक्ष रहे । जिस सावधानी और पवित्रता से उन्होंने सार्वजनिक धन की सार संभाल की उसकी मिसाल ढूँढ़े नहीं मिलती ।

इस राष्ट्रीय पुरुष से जहां राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस अत्यधिक

प्रभावित हुई वहां अंग्रेज सरकार भी बहुत प्रसन्न थी और उन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट व रायबहादुरी की उपाधि से सम्मानित किया। चीफ कमिश्नर, गर्वनर आदि कई बार आपके मेहमान बने, लेकिन १९२१ में गाँधी जी ने जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उन्होंने देश को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ने वाली जालिम सरकार की यह "रायबहादुरी' जो गुलामी में गौरव समझी जाती थी तत्काल त्याग दी—जैसे निर्लिप्त भाव से राम ने राज्य सिंहासन त्यागा था। यही नहीं उन्होंने आन्दोलनकारियों की सहायतार्थ एक कोष कायम किया। जिसमें सर्व प्रथम राशि स्वयं ने भेंट की।

१९२३ में जलियां वाला बाग दिवस को देश व्यापी रूप में मनाने के समय नागपुर में सरकार ने राष्ट्रीय ध्वज के प्रदर्शन पर रोक लगाई, इस पर जमनालाल जी ने सत्याग्रह प्रारम्भ किया जो "नागपुर झण्डा सत्याग्रह" के नाम से भारतीय स्वतन्त्रता संग्रांम के इतिहास में प्रसिद्ध है। अनेक सत्याग्राहियों के साथ श्रेष्ठी जमनालाल जी भी गिरफ्तार होकर जेल की शोभा बने। आखिर सरकार को हार मान कर झण्डा प्रदर्शन पर से प्रतिबन्ध हटाना पड़ा।

इसी वर्ष खादी के कार्य को बढ़ावा देने के लिए "अखिल-भारतीय खादी बोर्ड" की स्थापना हुई। अध्यक्ष बनाये गये जमनालाल जी। और उसके दो वर्ष पश्चात महात्मा गाँधी ने 'अखिल भारतीय चर्खा संघ' प्रारम्भ किया और उसका कोषाध्यक्ष जमनालाल जी को बनाकर संस्था का सारा कार्य भार उन पर डाल दिया।

जमनालाल जी का एक सुन्दर बगीचा प्रसिद्ध था मगनवाडी के नाम से। अपने उस नन्दन 'कानन को उन्होंने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ' के प्रधान कार्यालय के लिए सहर्ष

प्रदान कर दिया जहां आज तक खादी ग्रामोद्योग अनुसंधान केन्द्र एवं संग्रहालय स्थापित है।

गाँधी सेवा संघ के संस्थापकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान था अनेक वर्ष जमनालाल जी ही उसके अध्यक्ष पद पर सुशोभित रहे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा करने में भी वे पीछे नहीं रहे उन्होंने हिन्दी के प्रचार कार्य में पर्याप्त योगदान दिया। गाँधी जी ने एक बार कहा था। "जमनालाल के कारण ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन से मेरा सम्पर्क हुआ।" दक्षिण भारत में भी हिन्दी प्रचार का महान कार्य एक मात्र उन्ही के कारण सम्भव हो सका। हिन्दी की परिभाषा में उर्दू को सम्मिलित करने का प्रस्ताव भी जमनालालजी के कारण ही पारित हो सका।

महाराज अग्रसेन जी का यही बंशज, कुलदेवी लक्ष्मी के हाथों में खेल रहा था। वर्धा में इनका निजी एक भव्य "लक्ष्मी नारायण का मन्दिर था।" १९२८ में जब हरिजनोद्धार का जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो जमनालालजी ने भारत में सर्व प्रथम अपना देवालय हरिजनो के लिये खोलकर अदभुत साहस, उदारता व राष्ट्रीयता का परिचय दिया। धार्मिक रूढ़ियों में पले इस महापुरुष को रुढ़ियें छू तक नहीं सकी थी—स[illegible] जाति ने न केवल विरोध किया अपितु उन्हें समाज से बहिस्कृत भी कर दिया जब कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण समिति का निर्माण किया तो जमनालालजी ने विरोध की परवाह किये बिना उसका मंत्रित्व संभाला।

जमनालालजी को दो वर्ष का कठोर कारावास हुआ १९३० में गाँधीजी ने नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया और उसे बल देने के लिए सेठजी ने बम्बई में सत्याग्रह शिविर संगठित किया था पर उनके बन्दी बना लेने पर भी वह पुण्य कार्य रुका नहीं उसे

आगे बढ़ाया आपकी रूप, शील, गुण विधान धर्म पत्नी श्रीमती जानकी देवी ने। और आजादी की इस लड़ाई में पति के साथ कंधे से कंधा मिलाती हुई वे भी बन्दी बनी।

जानकीदेवी जावरा निवासी सेठ गिरधारीलाल जी जाजोदिया की सुपुत्री थी जिनका विवाह संवत् १९५८ में सेठ जमनालालजी के साथ कर दिया गया था।

सन १९२६ में जानकीदेवी और जमनालालजी ने अपनी बड़ी पुत्री का विवाह महात्मा गाँधी की उपस्थिति में साबरमती आश्रम में श्री रामेश्वरप्रसादजी नेवटिया के साथ किया। यह विवाह एक आदर्श विवाह था। पर्दा प्रथा, दहेज आदि कोई कुरिती को इसमें स्थान नहीं था। यह सुधारवादी विवाह अपने युग का सबसे क्रान्तिकारी विवाह माना गया था।

जमनालालजी इस बात के लिये अत्यन्त उत्सुक थे कि महात्मा गांधी जी वर्धा में ही रहें, उस समय तो गांधी जी ने उनके अनुरोध पर आचार्य विनोबा भावे को वहां भेज दिया और बाद में १९३३ में जेल से मुक्त होने पर बापू ने वर्धा को ही अपना निवास बना लिया काफी समय के बाद जब गांधी जी सेवाग्राम में चले गये तो जमनालालजी ने उस गांव की सारी भूमि दान कर दी। वर्धा की जिस बजाजवाड़ी में श्रेष्ठी जमनालाल जी विराजते थे वहाँ कांग्रेस कार्य समिति की अनेक ऐतिहासिक बैठक हुई है। अनेक बड़े-बड़े नेता व विशिष्ठ व्यक्तित्वों के वहाँ चरण पड़े हैं सभी का आतिथ्य वे प्रेम पूर्वक करते रहे।

देशी राज्यो की जनता की उन्नति के लिये भी उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया। लोकप्रिय शासन की स्थापनार्थ उन्होंने जयपुर राज्य प्रजा मण्डल के अध्यक्ष के रूप में सत्याग्रह किया जिससे राज्य में प्रवेश पर लगे प्रतिबंध को भंग करने के आरोप में जयपुर सरकार ने उन्हें अनिश्चित काल के लिये एकान्त

कारावास में डाल दिया। लेकिय अन्त में विजय सत्य की हुई और राज्य सरकार को दमन कारी कार्यवाही बन्द करके प्रजा की मांग के आगे झुक कर उन्हें रिहा करना पड़ा।

जमनालालजी न केवल उत्साही समाज सुधारक व राष्ट्रसेवी थे बल्कि महिलाओं की सर्वत्नोमुखी उन्नति के लिये भी उन्होंने अथक परिश्रम किया ऐतदर्थ वर्धा में 'महिला सेवाश्रम' की स्थापना की। अन्य अनेक शिक्षण संस्थायें भी आज उन्ही के कारण अस्तित्व राव सधी है दूसरी जातियों व सामाजिक संस्थाओ को भी आपने भरपूर दान दे सहिस्णुता वा भावात्मक ऐकता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। मारवाड़ी शिक्षा मण्डल, कांग्रेस कालेज, गोशाला आश्रम, गांधी सेबा संघ, नालबाडी चर्मालय, माधव बोर्डिंग हाउस, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा संस्थाय जीते जागते रूप में आपका प्रतिरूप हैं। अग्रवाल महासभा, अग्रवाल जातीय कोष आपके जातीय प्रेम की कहानी बुलन्द स्वरों में कहते हैं।

चलते चलते आ पहुँची जीवन की संध्या और वह अशुभ दिन था ११ फरवरी १९४२ का, रक्त चाप बढ़ जाने से आपकी इहलीला समाप्त हुई गुलामी में जन्मा हुआ सूरज आजादी में अस्त हुआ। जीवन में चालीस लाख से भी अधिक की सम्पति लोक कल्याणार्थ स्वाहा की जिनकी मृत्यु के पश्चात भी उनकी धर्म पत्नी ने तीन लाख रुपये की अपनी व्यक्तिगत धन राशि भी पुण्य कार्य में लगादी और सुपुत्र कमल नयन जी तथा रामकृष्ण जी ने पिताजी के लगाये पौधों को सींचने के लिये पांच लाख रुपये का ट्रष्ट बनाया।

इस प्रकार प्रताप के युग के पश्चात गांधी युग में भामाशा फिर जन्मा था और·····और भामाशा दुबारा मर गया।

श्री त्रिलोक गोयल ने २८ जनवरी १९३२ को अजमेर के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल परिवार में जन्म लिया। आप एम. ए. प्रभाकर. आई. जी. डी. (चित्रकला डिप्लोमा) हैं और स्थानीय अग्रवाल विद्यालय में कला शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

श्री गोयल जब मेट्रिक में थे अर्थात १९४७ से ही अनवरत साहित्य साधना में रत हैं। आप आकाशवाणी के कलाकार, कवि सम्मेलनों के लोकप्रिय गायक, प्रबुद्ध लेखक, प्रवक्ता व कुशल अभिनेता के रूप में जाने जाते हैं। अपने मधुर व्यवहार तथा आकर्षक व्यक्तित्व के कारण उनमें एक अद्भुत सम्मोहन शक्ति विद्यमान है।

आप अनेक संस्थाओं के विशिष्ठ अधिकारी व कर्मठ सदस्य हैं, अनेक प्रकाशित व अप्रकाशित पुस्तकों के रचियता हैं वैसे आपकी विशेष प्रिय विद्याये है कविता तथा नाटक पर समय समय पर विचार पूर्ण व्यंगात्मक लेख लिखने में भी आप सिद्धहस्त रहे हैं।

अग्रवाल समाज व महाराजा श्री अग्रसेनजी पर जितना सरस व शोधपूर्ण साहित्य आपने लिखा है उतना, किसी विरले ने ही लिखा होगा। प्रकाशित साहित्य में तीन एकाँकी, महाराज श्री अग्रसेन, कलम के आँसू तथा कुछ गीत हैं। दो राजस्थानी नाटक, एक गीत कविता संग्रह तथा एक निबन्ध संग्रह प्रकाशनाधीन है। इस प्रकार समाज के गौरव व इतिहास को जीवित रखने में जो योगदान आपने किया है इसके लिये समाज चिर कृतज्ञ रहेगा।

ऐसे प्रबुद्ध लेखक पर हम ही नहीं सम्पूर्ण समाज को गर्व है और हमारा विश्वास है कि वह अपनी प्रतिभावान लेखनी के द्वारा राष्ट्र व जाति को अधिकाधिक लाभान्वित कर सकेंगे।

—प्रकाशक